दादा भगवान कथित

पहचानें अंत:करण को

(मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार को)

दादा भगवान कथित

पहचानें अंतःकरण को

(मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार को)

मूल गुजराती संकलन : दीपकभाई देसाई
हिन्दी अनुवाद : महात्मागण

प्रकाशक : **अजीत सी. पटेल**
दादा भगवान विज्ञान फाउन्डेशन,
1, वरूण अपार्टमेन्ट, 37, श्रीमाली सोसायटी,
नवरंगपुरा पुलिस स्टेशन के सामने, नवरंगपुरा,
अहमदाबाद - 380009, Gujarat, India.
फोन : +91 79 3500 2100, +91 9328661166/77

कोपीराइट : © Dada Bhagwan Foundation,
5, Mamta Park Society, B\h. Navgujarat College, Usmanpura,
Ahmedabad - 380014, Gujarat, India.
Email : info@dadabhagwan.org
Tel : +91 9328661166/77

All Rights Reserved. No part of this publication may be shared, copied, translated or reproduced in any form (including electronic storage or audio recording) without written permission from the holder of the copyright. This publication is licensed for your personal use only.

प्रथम संस्करण : 2000 प्रतियाँ, जून 2026

भाव मूल्य : 'परम विनय' और
'मैं कुछ भी जानता नहीं', यह भाव!

द्रव्य मूल्य : 50 रुपए

मुद्रक : अंबा मल्टीप्रिन्ट
एच.बी.कापडिया न्यू हाइस्कूल के सामने,
छत्राल-प्रतापपुरा रोड, छत्राल,
ता. कलोल, जि. गांधीनगर-382729, गुजरात
फोन : +91 79 3500 2142

ISBN/eISBN : 978-81-992022-1-4

Printed in India

त्रिमंत्र

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो ऊवज्झायाणं
नमो लोए सव्वसाहूणं
एसो पंच नमुक्कारो
सव्व पावप्पणासणो
मंगलाणं च सव्वेसिं
पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ २ ॥
ॐ नमः शिवाय ॥ ३ ॥
जय सच्चिदानंद

‘दादा भगवान’ कौन?

जून 1958 की एक संध्या का करीब छः बजे का समय, भीड़ से भरा सूरत शहर का रेल्वे स्टेशन पर बैठे श्री ए.एम.पटेल रूपी देहमंदिर ‘दादा भगवान’ पूर्ण रूप से प्रकट हुए और कुदरत ने सर्जित किया अध्यात्म का अद्भुत आश्चर्य। एक घंटे में उन्हें विश्वदर्शन हुआ। ‘मैं कौन? भगवान कौन? जगत् कौन चलाता है? कर्म क्या? मुक्ति क्या?’ इत्यादि जगत् के सारे आध्यात्मिक प्रश्नों के संपूर्ण रहस्य प्रकट हुए।

उन्हें प्राप्ति हुई, उसी प्रकार केवल दो ही घंटों में अन्य को भी प्राप्ति करवाते थे, उनके अद्भुत सिद्ध हुए ज्ञानप्रयोग से। उसे ‘अक्रम मार्ग’ कहा। क्रम अर्थात् सीढ़ी दर सीढ़ी, क्रमानुसार ऊपर चढ़ना! अक्रम अर्थात् बिना क्रम के, लिफ्ट मार्ग, शॉर्ट कट!

वे स्वयं प्रत्येक को ‘दादा भगवान कौन?’ का रहस्य बताते हुए कहते थे कि ‘‘यह जो आपको दिखते हैं वे दादा भगवान नहीं हैं, हम ज्ञानी पुरुष हैं और भीतर प्रकट हुए हैं, वे ‘दादा भगवान’ हैं। जो चौदह लोक के नाथ हैं। वे आप में भी हैं, सभी में हैं। आपमें अव्यक्त रूप में रहे हुए हैं और ‘यहाँ’ हमारे भीतर संपूर्ण रूप से व्यक्त हुए हैं। मैं खुद भगवान नहीं हूँ। मेरे भीतर प्रकट हुए दादा भगवान को मैं भी नमस्कार करता हूँ।’’

आत्मज्ञान प्राप्ति की प्रत्यक्ष लिंक

परम पूज्य दादा भगवान (दादाश्री) को 1958 में आत्मज्ञान प्रकट हुआ था। उसके बाद 1962 से 1988 तक देश-विदेश परिभ्रमण करके मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति करवाते थे।

दादाश्री ने अपने जीवनकाल में ही पूज्य डॉ. नीरू बहन अमीन (नीरू माँ) को आत्मज्ञान प्राप्त करवाने की ज्ञानसिद्धि प्रदान की थी। दादाश्री के देहविलय पश्चात् नीरू माँ उसी प्रकार मुमुक्षुजनों को सत्संग और आत्मज्ञान की प्राप्ति, निमित्त भाव से करवा रही थी।

आत्मज्ञानी पूज्य दीपक भाई देसाई को दादाश्री ने सत्संग करने की सिद्धि प्रदान की थी। वर्तमान में पूज्य नीरू माँ के आशीर्वाद से पूज्य दीपक भाई देश-विदेश में निमित्त भाव से आत्मज्ञान करवा है।

इस आत्मज्ञान प्राप्ति के बाद हज़ारों मुमुक्षु संसार में रहते हुए, सभी ज़िम्मेदारियाँ निभाते हुए भी मुक्त रहकर आत्मरमणता का अनुभव करते हैं।

निवेदन

ज्ञानी पुरुष संपूज्य दादा भगवान के श्रीमुख से अध्यात्म तथा व्यवहारज्ञान से संबंधित जो वाणी निकली, उसको रिकॉर्ड करके, संकलन तथा संपादन करके पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किया जाता है। विभिन्न विषयों पर निकली सरस्वती का अद्‌भुत संकलन इस पुस्तक में हुआ है, जो नए पाठकों के लिए वरदान रूप साबित होगा।

प्रस्तुत अनुवाद में यह विशेष ध्यान रखा गया है कि वाचक को दादाजी की ही वाणी सुनी जा रही है, ऐसा अनुभव हो, जिसके कारण शायद कुछ जगहों पर अनुवाद की वाक्य रचना हिन्दी व्याकरण के अनुसार त्रुटिपूर्ण लग सकती है, लेकिन यहाँ पर आशय को समझकर पढ़ा जाए तो अधिक लाभकारी होगा।

प्रस्तुत पुस्तक में कई जगहों पर कोष्ठक में दर्शाए गए शब्द या वाक्य परम पूज्य दादाश्री द्वारा बोले गए वाक्यों को अधिक स्पष्टतापूर्वक समझाने के लिए लिखे गए हैं। जबकि कुछ जगहों पर अंग्रेजी शब्दों के हिन्दी अर्थ के रूप में रखे गए हैं। दादाश्री के श्रीमुख से निकले कुछ गुजराती शब्द ज्यों के त्यों *इटालिक्स* में रखे गए हैं, क्योंकि उन शब्दों के लिए हिन्दी में ऐसा कोई शब्द नहीं है, जो उसका पूर्ण अर्थ दे सके। हालांकि उन शब्दों के समानार्थी शब्द अर्थ के रूप में, कोष्ठक में और पुस्तक के अंत में भी दिए गए हैं।

ज्ञानी की वाणी को हिन्दी भाषा में यथार्थ रूप से अनुवादित करने का प्रयत्न किया गया है किन्तु दादाश्री के आत्मज्ञान का सही आशय, ज्यों का त्यों तो, आपको गुजराती भाषा में ही अवगत होगा। जिन्हें ज्ञान की गहराई में जाना हो, ज्ञान का सही मर्म समझना हो, वह इस हेतु गुजराती भाषा सीखें, ऐसा हमारा अनुरोध है।

अनुवाद से संबंधित कमियों के लिए आपसे क्षमाप्रार्थी हैं।

❖❖❖❖❖

संपादकीय

मनुष्य जीवन की सार्थकता आंतरिक शांति प्राप्त करने में और अंत में खुद के स्व-स्वरूप को पहचानने में रही है। इस यात्रा में सबसे बड़ा अवरोध भी अपना अंत:करण है और सबसे बड़ा साधन भी वह ही है। मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार - अंत:करण के ये चार भाग किस तरह कार्य करते हैं, उनके बीच क्या संबंध है और उनसे पर कैसे जा सकते हैं, वह समझना आध्यात्मिक प्रगति के लिए अनिवार्य है।

प्रस्तुत पुस्तक परम पूज्य दादाश्री की अमृतवाणी का संकलन है। इस पुस्तक में दादाश्री ने अत्यंत सरल, सहज और दृष्टांत युक्त शैली में अंत:करण के इन चारों ही भागों का गहन विश्लेषण किया है। सामान्य रूप से हम इन शब्दों का प्रयोग तो करते रहते हैं, परंतु उनके वास्तविक स्वरूप, उनकी कार्यपद्धति और उनके बीच की भेदरेखा से अधिकतर अनजान रहते हैं।

परम पूज्य दादाश्री इस पुस्तक में अंत:करण के चारों अंगों के गूढ़ रहस्य, कि जिनकी थाह प्राप्त करने के लिए आज भी विश्व प्रयत्नशील है, उसे अत्यंत सहजता से खोलते हैं। इन चारों ही अंगों की आंतरिक कार्यप्रणाली, उनका स्वरूप और देह में स्थान की सटीक जानकारी दादाश्री देते हैं। विशेष रूप से, प्राणियों और मनुष्यों के अंत:करण में अंतर, बालक का अंत:करण, मनुष्यों में अंत:करण का डेवेलपमेन्ट साथ ही अंत:करण की शुद्धि के लिए उपाय पर प्रकाश डाला गया है। यह ज्ञान वाचक को खुद के आंतरिक संघर्षों को समझने में और अंतत: स्व-स्वरूप की पहचान द्वारा शाश्वत शांति के अनुभव की तरफ ले जाता है।

यह पुस्तक सिर्फ बौद्धिक जिज्ञासा को संतुष्ट करने के लिए नहीं है, परंतु आंतरिक रूपांतरण के लिए एक सशक्त साधन है। आशा है कि वाचकगण इस पुस्तक का गंभीरतापूर्वक अध्ययन और मनन

करके, खुद के अंतःकरण के खेल को समझकर, उससे पर ऐसे शुद्धात्मा पद को प्राप्त करने की तरफ प्रयाण करेंगे।

इस विषय की अधिक गहन और विस्तृत समझ 'आप्तवाणी 10 (पूर्वार्ध और उत्तरार्ध)' पुस्तक में से प्राप्त हो सकेगी, जो वाचक को गहन अभ्यास में अत्यंत सहायक सिद्ध होगी।

यहाँ पर उल्लेखनीय है कि दादाश्री के अलग-अलग सत्संगों में निकली हुई वाणी का संकलन यहाँ किया गया है। दादाश्री की वाणी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव और निमित्त के अधीन, उस संदर्भ में निकली हुई है। इसलिए संकलन में यदि कोई त्रुटि भासित हो, तो उसे संकलनकार की गलती मानकर क्षमा करना। वाचक को वाणी पढ़कर, आशय समझकर, ज्ञान पकड़कर खुद की प्रगति कर लेनी है। इसके बावजूद यदि कोई बाबत समझ में न आए तो प्रत्यक्ष ज्ञानी से पूछकर समाधान प्राप्त कर लेना है।

जय सच्चिदानंद

अनुक्रमणिका

[1]	अंतःकरण के चार भाग	1
[2]	अंतःकरण की कार्यपद्धति	13
[3]	'उनका' स्वरूप और देह में स्थान	24
[4]	अंतःकरण की उत्क्रांति	33
[5]	ज्ञान से होता है मन वश	40
[6]	चित्तशुद्धि से मुक्ति	60
[7]	बुद्धि-अहंकार का क्षय ज्ञानप्रकाश से	69
[8]	धर्म, अंतःकरण का और आत्मा का	81

पहचानें अंतःकरण को

[1]
अंतःकरण के चार भाग

विभाजन, अंतःकरण का

प्रश्नकर्ता : दादा, अंत:करण क्या है? उसके बारे में थोड़ा समझाइए न।

दादाश्री : मनुष्य देह जिस आधार से कार्य करती है, उसके दो विभाग हैं : (1) स्थूल – बाह्य विभाग, जिसे बाह्यकरण कहते हैं। (2) सूक्ष्म – आंतरिक विभाग, जिसे अंत:करण कहते हैं।

अंत:करण चार चीज़ों का बना हुआ है। (1) मन (2) बुद्धि (3) चित्त और (4) अहंकार।

प्रश्नकर्ता : ये मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार वे अंत:करण के अंग हैं या चारों ही अलग-अलग हैं?

दादाश्री : अलग हैं। ये चारों साथ में रहते हैं, उस भाग को अंत:करण कहा जाता है। तो जिस समय कोई एक काम कर रहा होता है, उस समय दूसरा काम नहीं करता। ये चारों ही भाग अलग-अलग हैं।

प्रश्नकर्ता : तो ये मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, ये सब अलग-अलग चीज़ें हैं?

दादाश्री : हाँ, अलग-अलग चीज़ें हैं। गुणधर्म अलग हैं इसलिए। यों अंत:करण के तौर पर एक ही है। लेकिन गुणधर्म अलग हैं इसलिए अलग-अलग हैं। अंदर अंत:करण ऐसी चीज़ है न, कि इस अंत:करण के चार भाग हैं। लेकिन ये चार इसके अलग-अलग टुकड़े नहीं हैं। जिस समय मन काम करता है, उस समय मनरूपी अंत:करण हो जाता है। फिर बुद्धि काम करती है तब बुद्धिरूपी अंत:करण हो जाता है और जब चित्त काम करता है न, तब चित्तरूपी अंत:करण हो जाता है। इस तरह ये चार भाग हैं लेकिन एक समय पर एक ही स्वतंत्र रूप से काम करता है। अब इस अंत:करण में ये सब काम करते हैं।

प्रश्नकर्ता : हाँ, वह प्रक्रिया कैसी हैं? ये मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार की जो सब क्रियाएँ बताई हैं न, वे कैसी हैं? वह समझना है।

दादाश्री : ऐसा है न, इस अंत:करण में चार तरह की क्रियाएँ होती रहती हैं। तो जिस समय जो क्रिया चल रही होती है, वही पूरे अंत:करण को रोककर रखती है। यानी कि जब अंत:करण में सिर्फ विचार ही आ रहे हों, जिस समय वह विचार करने लगे तब उसे माइन्ड (मन) कहते हैं। बाहर भटकने गया हो तब चित्त कहते हैं और डिसिज़न (निर्णय) ले रहा हो उस समय बुद्धि कहते हैं। व्हेर इज़ प्रॉफिट एन्ड व्हेर इज़ लॉस (कहाँ फायदा है और कहाँ नुकसान है) ऐसा डिसिज़न ले रहा हो उस समय बुद्धि है, और 'मैंने किया, मैंने किया!' वह इगोइज़म (अहंकार) है। संडास जाने की शक्ति नहीं है फिर भी कहता है कि, 'मैंने किया, मैंने किया!' यानी इसी अंत:करण के चार भाग हैं, जिस समय जो कार्य करता है उस अनुसार उसे नाम दिया जाता है।

विचार करना, वह मन का धर्म

प्रश्नकर्ता : यह तो आपने स्थूल बताया, लेकिन अंदर से उठ रहे विचारों में डिस्टिंग्विश (अलग) करना है।

दादाश्री : उसके बारे में ही मैं बता रहा हूँ न, यह। अब यह उसकी ही बात बता रहा हूँ! अपने अंत:करण के चार भाग हैं। अंत:करण तो एक ही है लेकिन उस समय जो भाग काम कर रहा होता है उसका ही पूरा अंत:करण माना जाता है। जिस समय विचारणा करने लगता है, उस समय मन का साम्राज्य रहता है। यानी जब मन काम कर रहा होता है उस समय बस विचार पर विचार, विचार पर विचार, केवल विचारों के जाल ही बुनता रहता है। विचारों के अलावा और कुछ भी नहीं, उसे मन कहते हैं। मन बाहर नहीं जाता। लोग कहते हैं न, मेरा मन मुंबई जाता है, इधर भटकता है और उधर भटकता है। मन इस तरह नहीं भटकता। जो नहीं भटकता उसे मन कहते हैं। इतनी भूल हैं लोगों की। लोग ऐसा नहीं कहते, कि ऑफिस में होता हूँ तब भी मन घर पर चला जाता है? वह क्या है? तुझे समझ में आया मन किसे कहेंगे?

प्रश्नकर्ता : लेकिन अंदर से विचार उठ रहे होते हैं तब इतनी अधिक उलझन होती है, उन विचारों में बाहर जाने वाला विचार है या अंदर जाने वाला विचार है अथवा भटकने वाला विचार है या नहीं भटकने वाला विचार है, यही समझ में नहीं आता।

दादाश्री : बाहर विचार होता ही नहीं है, विचार अंदर ही होता है। मन ऐसी चीज़ है कि शरीर से बाहर नहीं निकलता। अगर निकलता तो कितने ही लोग, साइन्टिस्ट और योगी उसका दरवाज़ा ही बंद कर देते, फिर से अंदर आने ही नहीं देते। लेकिन मन इस शरीर से बाहर निकलता ही नहीं है न! इसलिए अंदर सोचता ही रहता है। इस तरह से, उस तरह से सोचता ही रहता है, निरंतर। यह उसकी बाउन्ड्री (सीमा)। उसका और कोई काम नहीं है। विचार रूपी धर्म, वह मन का धर्म है, सहज स्वभावी धर्म है।

मन का धर्म सिर्फ सोचने का ही है और वह एग्ज़ोस्ट (गलन) होता है, उस समय विचारों के जाल होते हैं। और मन जब मूल स्थिति में पड़ा रहता है, तब ग्रंथियों, गाँठों के तौर पर होता है। उसमें

तरह-तरह की ग्रंथियाँ होती हैं। विचार ही करता रहता है तब हम समझ जाते हैं कि ये विचार कौन कर रहा होगा इसमें? तब उसे मन कहेंगे। सिर्फ विचार ही कर रहा हो, और कुछ भी नहीं हो रहा हो तब अंत:करण में सिर्फ मन ही काम कर रहा है। तब पूरा अंत:करण मन का काम करता है। आपको समझ में आई, यह डिमार्केशन लाइन (भेदरेखा)?

सोचने के अलावा मन का दूसरा कोई काम नहीं है। पश्चाताप भी उसका काम नहीं है। पश्चाताप करना उसका काम नहीं है, सिर्फ सोचना। अभी विचार की भूमिका में है, विचारों का जाल, उसे मन कहते हैं। और मन तो बेचारा भोला है, अकेला ही अंदर जाल बुनता रहता है इतना ही है। यह स्पष्टीकरण हो जाए ऐसा नहीं है। इसीलिए पूरा जगत् उलझन में है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन यह स्पष्टीकरण हो जाए ऐसा है ही नहीं।

दादाश्री : भान ही नहीं है न, इसका कोई!

भटके, वह चित्त

प्रश्नकर्ता : मन और चित्त में क्या अंतर है?

दादाश्री : दो शब्द लिखते हो, तो समान लगते हैं? बहुत मिलते-जुलते हैं? वह ही समझने जैसा है।

जगत् मन को 'चित्त' कहता है और चित्त को ही 'मन' कहता है। इसलिए पूरा केस ही उलझ गया है।

मन यानी क्या? निरंतर विचारों का जाल। जब सिर्फ विचारदशा ही होती है, तब उसे मन कहते हैं। फिर जब विचारों के जाल न हों, तब फिर यहाँ बैठे हों और घर पहुँच जाए, घर की सारी बातें करें तब समझना कि यह चित्त भटक रहा है। चित्त का काम है देह में भटकना और बाहर भी भटकना। जो भटकता है, उसे मन नहीं कहते, चित्त कहते हैं।

ये लोग क्या कहते हैं? मेरा मन यहाँ से मुंबई चला जाता है। मन इस तरह से नहीं जाता। वह चित्त जाता है, चित्त भटकता है। ये बच्चे जब पढ़ाई करते हैं तब उनके माँ-बाप कहते हैं न, 'अरे, तू पढ़ रहा है लेकिन तेरा चित्त ठिकाने पर नहीं है।' क्रिकेट में चला जाता है, ऐसा होता है या नहीं होता?

प्रश्नकर्ता : होता है।

दादाश्री : आप यहाँ बैठे हो, तब वह भादरण भी घूम आता है; अरे, बोरसद की कोर्ट में भी जाकर आता है, उसे चित्त कहते हैं। उस समय आपको जानना है कि अभी यह चित्त का काम है।

मन स्थूल, चित्त सूक्ष्म

अब पूरे हिन्दुस्तान में यही एक गड़बड़ हो गई है न, मन को और चित्त को एक कर दिया है। खिचड़ी बना दी है! चित्त तो बहुत बड़ी चीज़ है इसमें। वह चित्त जब बाहर भटकता है न, भटक, भटक... तब एकाग्रता करनी हो तो नहीं हो पाती। उसे खूँटे से बाँधना हो तो नहीं बंध सकता। मन की एकाग्रता नहीं करनी है, चित्त की एकाग्रता करनी है।

चित्त मोड़ने से नहीं मुड़ता। इसीलिए तो योगी लोग यहाँ, चक्रों पर चित्त को स्थिर करते हैं। वह मन की साधना नहीं है, चित्त की साधना है। लेकिन चित्त और मन को पहचानने की शक्ति नहीं होने की वजह से वे चित्त को ही मन कहते रहते हैं। चित्त को तो शरीर में घुसने न दे तब भी घुस जाता है, इतनी अधिक सूक्ष्म चीज़ है। कहीं भी आर-पार निकल जाता है। मन स्थूल चीज़ है। यानी चित्त और मन दोनों अलग हैं, ऐसा आपको समझ में आया? दोनों के काम अलग हैं।

चित्त अर्थात् ज्ञान-दर्शन

प्रश्नकर्ता : बाहर निकलता है तब मन का काम चित्त करने लग जाता है या मन का रूपांतरण चित्त में हो जाता है?

दादाश्री : नहीं। सभी अलग-अलग चीज़ें ही हैं।

चित्त किस भाव से बना हुआ है वह मैं आपको बताता हूँ। चित्त दो शब्दों से बना हुआ है, वह एक शब्द नहीं है। ज्ञान और दर्शन, इनका साथ में भावार्थ करें तो उसे चित्त कहते हैं। देखता और जानता है, देखता और जानता है। वही भटकते रहने की आदत है! यह देख आता है, वह देख आता है, फलाना देख आता है, ऐसा देख आता है, वैसा देख आता है। यहीं पर बैठे-बैठे क्रिकेट भी देख आता है! जबकि मन में तो ज्ञान भी नहीं है और दर्शन भी नहीं है।

चित्त अर्थात् ज्ञान-दर्शन, इन दो गुणों का अधिकारी, वह चित्त है। ये दोनों ही गुण अशुद्ध हों तो वह अशुद्ध चित्त कहलाता है और शुद्ध हों तो शुद्ध चित्त कहलाता है।

शुद्ध ज्ञान + शुद्ध दर्शन = शुद्ध चित्त = शुद्धात्मा।

अशुद्ध ज्ञान + अशुद्ध दर्शन = अशुद्ध चित्त = अशुद्धात्मा।

यहाँ बैठे हुए हों और परदेश में देख आता है, घर-वर सभी देख आता है, वह देख आने का, जानकर आने का स्वभाव चित्त का है, जबकि मन का स्वभाव दिखाने का, पेम्फलेट दिखाने का है। मन एक के बाद एक पेम्फलेट दिखाता है। लोग तो किसी का दोष किसी और पर मढ़ देते हैं, कहते हैं कि, 'मेरा मन भटक रहा है!' मन कभी भी इस शरीर को छोड़कर बाहर नहीं जा सकता, जो जाता है वह चित्त है। लोग तो मन को नहीं पहचानते, चित्त को नहीं पहचानते, बुद्धि को नहीं पहचानते और अहंकार को भी नहीं पहचानते। अरे! अंत:करण-अंत:करण, ऐसा कहते हैं लेकिन अंत:करण को समझते नहीं है।

इस तरह से मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार की बात किसी भी शास्त्र में नहीं समझाई गई है।

यह चित्त तो अंदर भी भटकता है और बाहर भी भटकता है। दिमाग़ में क्या चल रहा है, वह चित्त देख आता है।

देखने की शक्ति चित्त की

मन में देखने की शक्ति नहीं है जबकि चित्त में देखने की शक्ति है। अत: चित्तशक्ति और मनशक्ति, दोनों अलग हैं। मन किसी भी चीज़ को नहीं देख सकता जबकि चित्त तो वहाँ जाकर सबकुछ देख आता है।

चित्त का काम है बाहर भी जाना। यहाँ से ऑफिस में जाता है, ऑफिस में अपनी कुर्सी-टेबल सब देखकर वापस आ जाता है। ऑफिस की टेबल-कुर्सी दिखाई देती हैं या नहीं, यहीं पर रहकर?

प्रश्नकर्ता : हाँ, दिखाई देती हैं।

दादाश्री : ज्यों के त्यों?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : देख पाना मन का स्वभाव नहीं है। बाहर जाना मन का स्वभाव नहीं है। देख पाना चित्त का स्वभाव है।

मन और चित्त का भेद कौन खोजता है? या तो वह मन को जीतने की कोशिश कर रहा हो, यानी कि मन को हराने की, या फिर आत्मा प्राप्त करने के लिए खोजता है। जिसे आत्मा प्राप्त करना हो, वह मन का और चित्त का भेद खोजता है।

फायदा-नुकसान देखे, निर्णय करे वह बुद्धि

प्रश्नकर्ता : अब आप बुद्धि के बारे में ज़रा विशेष स्पष्टता कीजिए।

दादाश्री : हाँ, लोग जिसे बुद्धि कहते हैं, वास्तव में वह बुद्धि नहीं है। फायदा-नुकसान देखती है उसे बुद्धि कहते हैं। दूसरा, (अन्य बाबतों के लिए) लोग तो बुद्धि पर आरोप लगाते हैं। यहाँ आने वाला व्यक्ति क्या देखता है? जगह देखता है या फायदा-नुकसान? कहाँ पर मुझे बहुत फायदा मिले और नुकसान न हो। फिर ट्रेन में बैठने वाला?

प्रश्नकर्ता : पहले खिड़की देखता है।

दादाश्री : बस में बैठने वाला? जहाँ जाएँ वहाँ फायदा-नुकसान देखना, उसे बुद्धि कहते हैं। आपने फायदा-नुकसान देखा है कभी? निर्णय करती है कि यह सही है या वह सही है? या फिर इस तरह से नुकसान हो जाएगा, इस तरह से फायदा होगा, तब वह बुद्धि का भाग है। बुद्धि अपना काम करती रहती है, फायदे-नुकसान के व्यापार में रहती है, उस समय बुद्धि का साम्राज्य होता है।

दूसरा, बुद्धि सिर्फ डिसिज़न (निर्णय) देती है। हाँ, फायदा-नुकसान देखने के बाद अब क्या करना चाहिए, वह डिसिज़न देती है। शास्त्रकारों ने, यह बुद्धि डिसिज़न लेती है, ऐसा कहा है।

मन तो सिर्फ सोचता ही रहता है। डिसिज़न न हो, उसे मन कहते हैं। जहाँ जिन विचारों का डिसिज़न न हो, अनडिसाइडेड (अनिश्चित) विचार, उसे मन कहते हैं और डिसाइडेड (निश्चित) विचारों को बुद्धि कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि और चित्त में क्या अंतर है?

दादाश्री : बुद्धि और चित्त में इतना अंतर है कि बुद्धि नया नहीं देख सकती। जो है सिर्फ उतने पर से ही वह डिसिज़न देती है। बुद्धि डिसिज़न देती है जबकि चित्त का डिसिज़न नहीं होता।

अहंकार का स्वभाव

अंत:करण का चौथा और आखिरी भाग है, अहंकार। अहंकार अर्थात् अहम् कार, 'मैंने किया' इतना ही, बस! वह और कुछ नहीं भोगता, न ही कुछ करता है। 'मैं करता हूँ', बस इतना ही अहम् कार! 'मैं यह करता हूँ, मैं ही चलाता हूँ', वही उसका अहंकार है। फिर मार भी खाता है।

अहंकार का स्वभाव यानी कोई ऐसे (हाथ जोड़कर) कहे कि, 'भाई, कैसे हैं? आइए पधारिए, पधारिए!' तो वह तुरंत टाइट (अकड़)

हो जाता है! अगर ऐसा नहीं किया हो तो फिर चुपचाप बैठ भी जाता है! ऐसा है अहंकार का स्वभाव। अहंकार कार्य कर रहा हो तब हमें पहचान लेना चाहिए कि इस भाग को अहंकार कहते हैं। छाती ऐसी हो जाती है, वह किसका कार्य है? उस समय मन ऐसा नहीं है, हेल्पिंग (मदद में) तो वे सब लोग (मन-बुद्धि-चित्त) होते ही हैं, लेकिन उस समय मुख्य कार्य इसका (अहंकार का) है!

यह अहंकार धृतराष्ट्र जैसा अंधा है। वह बुद्धि की आँखों से चलता है, फिर भी मालिकी उसकी ही है। इसमें अहंकार का क्या अर्थ है? खुद ने कुछ भी नहीं किया हो फिर भी कहता है, 'मैंने किया'! 'मैं आया'। अरे, तू कैसे आया? गाड़ी नहीं लायी? गाड़ी थी तो आया न? यानी सभी ऐसा कहते हैं न, इसे अहंकार कहते हैं। अब, वह अहंकार रखे बिना बोलो तो हर्ज नहीं है। 'मैं आया' भाषा बोलने में हर्ज नहीं है लेकिन वह है अहम् वाली, जबकि यह है निर्अहंकार वाली, समझ में आता है या नहीं? यानी ये मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार समझ में आया थोड़ा-बहुत?

पहले अंत:करण में होता है, बाद में बाह्यकरण में आता है

ये मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, वह अंत:करण है और यह बाह्यकरण है। ऐसे दो भाग कर दिए हैं। पहले अंत:करण में होता है, उसके बाद बाह्यकरण में आता है। अत: जिसे अंत:करण देखना आ गया उसे ऐसा समझ में आ सकता है कि अभी कुछ देर बाद क्या होगा? और अंत:करण के चार ही भाग हैं, पाँचवाँ भाग नहीं है!

अंत:करण यानी क्या? वह आंतरिक है। पहले अंत:करण में सूक्ष्म रूप में अंदर होता है और बाद में उसकी फोटो के रूप में यह स्थूल में होता है।

किसी भी कार्य की पहली फोटो, पहली छाप एक्ज़ेक्ट अंत:करण में आती है और फिर वही बाह्यकरण में तथा बाह्य जगत् में रूपक में आती है।

किसी पर बाहर चिढ़ने वाले हो, तो अंदर चिढ़ ही चुके होते हैं, शुरूआत हो चुकी होती है।

प्रश्नकर्ता : उसके प्रतिस्पंदन आते हैं।

दादाश्री : नहीं, वे अंदर (उस पर) चिढ़ चुके होते हैं और उसके बाद ही वह मिलता है, तब फिर वापस उस पर चिढ़ते हैं। अत: यों ही नहीं होता। पहले अंदर हो जाता है।

लोग कहते हैं, कि इसने इसे पॉइज़न दिया, इसलिए यह व्यक्ति मर गया। वह करेक्ट बात नहीं है। पहले अंत:करण में पॉइज़न दे दिया जाता है। वह सूक्ष्म स्वरूप का पॉइज़न है और यह स्थूल स्वरूप का पॉइज़न है। पहले क्रिया अंदर होती है, बाद में बाहर होती है।

अंत:करण देखना आए तो बाहर क्या होगा, वह जान जाएँ

किसी को अंत:करण देखना आता हो तो वह बता सकता है, कि अब बाहर ऐसा होगा। इस अंत:करण की फोटो हम देख सकते हैं कि अभी क्या काम चल रहा है! इसलिए हम समझ जाते हैं कि अब इसके बाद बाह्यकरण में यह होगा। जिसे 'नेगेटिव'* प्रिन्ट देखना आ गया, वह 'पॉज़िटिव' (फोटो) के बारे में बता सकता है। यानी कि पहले अंत:करण में और उसके आधार पर बाह्यकरण चलता है। सारी इन्द्रियाँ भी उसके अधीन हैं।

प्रश्नकर्ता : अपने यहाँ कोई भाई आए हों, वे कुछ न बोलें, फिर भी कई बार समझ में आ जाता है कि किसलिए आए होंगे।

दादाश्री : ये लोग अनुभव के आधार पर निष्कर्ष निकालते हैं जबकि दर्शन का विषय अलग है। अनुभव गलत भी हो सकता है, कभी वह सही भी हो सकता है और सही न भी हो। अत: उसे

(* नेगेटिव - फोटोग्राफ की उल्टी प्रतिमा, जिस पर से वास्तविक चित्र निकाल सकते हैं।)

अनिश्चित चीज़ कहते हैं। लेकिन अंत:करण का जो दर्शन है, वह तो एक्ज़ेक्ट निकल जाता है। नेगेटिव देख लेने के बाद पॉज़िटिव का सबकुछ ही दिखाई देता है। (पहले) नेगेटिव बने बगैर नहीं रहता। अंत:करण में 'नेगेटिव' बन ही जाता है।

उलटी होने वाली हो, तो उसका अंदर अंत:करण में पहले ही पता चल जाता है इसलिए लेकिन वहाँ तुरंत सावधान हो जाता है। वह बाथरूम की ओर दौड़ता है। पहले अंत:करण में हो जाता है लेकिन पता नहीं चलता उसका क्या कारण है? वह उलटी तो असर करती है न, यानी वहाँ इफेक्ट होता है इसलिए चित्त जल्दी से वहाँ पर जाता है, जबकि दूसरे कितने ही इफेक्ट ऐसे होते हैं कि चित्त बाहर गया हो तो आता ही नहीं, इसलिए पता नहीं चलता। फिर सबकुछ उलझ जाता है। बुज़ुर्ग लोग कहते थे न, कि 'अब मेरा जाने का टाइम (समय) हो गया है', ऐसा भी पता चल जाता था। 'अब मेरा आज का दिन नहीं निकल पाएगा। इसलिए तैयारी करके रखो।' क्योंकि अंत:करण में हो जाता है, उसके बाद बाह्यकरण में होता है। पहले अंत:करण में हुए बगैर बाह्यकरण में नहीं हो सकता। अंत:करण का गोला देखना आ जाए तो इन ज्योतिषियों के गोले में देखने नहीं जाना पड़ेगा। ये तो ज्योतिषियों से कहते हैं कि, 'गोले में मेरा देखकर बताइए ज़रा।' 'अरे! तू अपने अंदर ही देख ले न!' चाहे अज्ञानी हो लेकिन क्या गोला कहीं चला गया है? उल्टी होती है तो वह पता चलता है या नहीं चलता? इतना फोरकास्ट (आगे का दिखाई देना) तो लोगों में है लेकिन इन्डियन फेलो (लोग) हैं न! बाहर के लोगों (फॉरेनर्स) को इन उलझनों का पता नहीं चलता।

भविष्य का आभास अंत:करण की शुद्धि के अधीन

प्रश्नकर्ता : अंत:करण अशुद्ध हो तब तक आत्मा में त्रिकाल ज्ञान का जो स्वभाव गुण है वह उत्पन्न नहीं हो पाता। लेकिन मन, चित्त शुद्ध हो जाते हैं, स्थिर हो जाते हैं तब त्रिकाल ज्ञान उत्पन्न हो जाता है या कैसा है?

दादाश्री : कौन सा ज्ञान?

प्रश्नकर्ता : त्रिकाल ज्ञान। भूत, भविष्य और वर्तमान का ज्ञान।

दादाश्री : भविष्य का ज्ञान आप किसे कहते हो, यह मुझे बताओ न, आपकी भाषा मुझे समझाओ।

प्रश्नकर्ता : कृपालुदेव को मिलने कच्छ से दो भाई आए थे, तब वे सामने से उन्हें लेने गए और 'आइए, धारशी भाई' ऐसा कहा, वहाँ वे पहले से ही जान गए थे।

दादाश्री : ऐसा तो हो सकता है। ऐसा है न, ऐसा एकाग्रता से हो जाता है। वह तो अंदर दर्शन में आता है कुछ लोगों को। तो, क्या होने वाला है, उसका आभास हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : यह अंत:करण की निर्मलता पर आधारित है न?

दादाश्री : हाँ, अंत:करण की निर्मलता हो तभी आभास होता है। यह सिर्फ ज्ञानी को ही होता है ऐसा नहीं है, ऐसा आभास संतों को भी हो सकता है।

प्रश्नकर्ता : ऐसे लोग भी हैं जो यहाँ बैठे-बैठे किसी बिल्डिंग में या किसी रूम में क्या-क्या है, वह सब यहाँ बैठे-बैठे बता देते हैं। तो वे वहाँ का देख पाते हैं, ऐसा कैसे?

दादाश्री : वह अंत:करण की निरावरणता है, अंत:करण की शुद्धि है। कुछ योग मार्ग ऐसे होते हैं, वे अंत:करण की शुद्धि कर सकते हैं तब वह व्यक्ति ऐसा देख सकता है।

❖❖❖❖❖

[2]
अंतःकरण की कार्यपद्धति

पार्लियामेन्टरी पद्धति, अंतःकरण में...

अंत:करण में हर एक का फंक्शन (कार्य) अलग-अलग होता है, लेकिन फिर भी हर एक कार्य चारों के संयुक्त सहयोग से ही होता है।

यहाँ से बाहर निकलते हैं तो पहले मन में विचार आता है कि 'टैक्सी में जाएँगे या स्टेशन यहाँ से नज़दीक है, चलते हुए जाएँगे? नज़दीक है तो बेकार ही दो रुपये खर्च करके क्या करना है?' फिर दूसरी बार सोचता है कि, 'नहीं, बस में चलो न!' फिर तीसरी बार सोचता है कि, 'नहीं, बस की बजाय टैक्सी लेकर जाएँ तो हम सब साथ बैठकर जा पाएँगे।' उस समय मन बहुत विचारणा में रहता है। यानी मन ऐसा भी सोचता है, वैसा भी सोचता है, सबकुछ सोचता है कि ऐसा करेंगे, वैसा करेंगे। फिर अंत में बुद्धि कहती है कि, 'नहीं, टैक्सी से जाएँगे।' जिसने निर्णय ला दिया वह बुद्धि का काम है। तब फिर बाकी सब चुप हो जाते हैं। मन निर्णय नहीं ले सकता। चित्त निर्णय नहीं ले सकता। अहंकार भी निर्णय नहीं ले सकता। बुद्धि के निर्णय लेते ही अहंकार तुरंत हस्ताक्षर कर देता है। उसके हस्ताक्षर तो

लेने ही पड़ते हैं। फिर यदि बुद्धि भी उसके हस्ताक्षर न ले, तो नहीं चलता।

प्रश्नकर्ता : अहंकार के हस्ताक्षर नहीं लेती तब तक क्या होता है?

दादाश्री : काम रुका रहता है। फिर भी, अहंकार का *चलन* नहीं है और उसके हस्ताक्षर के बिना चलता भी नहीं है।

प्रश्नकर्ता : यह तो उस इंग्लैन्ड के राजा जैसा है!

दादाश्री : वह तो आप जो भी कहो। जिसके साथ सिमिली (तुलना) करनी हो तो करना लेकिन अहंकार का नहीं चलता। चलता है बुद्धि का। परंतु सिर्फ बुद्धि का कैसे चलेगा? अहंकार के हस्ताक्षर लेने पर ही काम होता है। यानी कि अंदर पूरी पार्लियामेन्टरी पद्धति चल रही है।

चलन (वर्चस्व) बुद्धि का और रौब अहंकार का

बुद्धि जो डिसिज़न लेती है, इगोइज़म (अहंकार) उस पर सिर्फ हस्ताक्षर ही करता है। वह और कुछ भी नहीं करता। जहाँ-जहाँ बुद्धि डिसिज़न लेती है वहाँ-वहाँ वह अहंकार करता है, यही उसका काम है। अहंकार हस्ताक्षर करता है। जहाँ पर चित्त कहे वह वहाँ पर हस्ताक्षर नहीं करता। अरे, मन के कहने पर भी हस्ताक्षर नहीं करता। लेकिन बुद्धि कहती है इगोइज़म वहाँ हस्ताक्षर कर देता है।

अत: अहंकार किसके ताबे में है? बुद्धि के ताबे में। इसलिए बुद्धि कहे वैसा अहंकार करता रहता है। बुद्धि कहे, कि 'यहाँ हस्ताक्षर करो' तो कर देता है। बुद्धि की आँखों से बेचारा हस्ताक्षर करता है लेकिन रौब तो उसी का है। *चलन* बुद्धि का और रौब उसका! हस्ताक्षर उसके होते हैं! जैसे कि प्रेसिडेन्ट ऑफ इन्डिया (राष्ट्रपति) हो ऐसा! अहंकार बड़ा है और बुद्धि उसकी असिस्टेन्ट (सहायक) होने के बावजूद भी प्रधानमंत्री की तरह काम कर रही है। अब,

बुद्धि जो कर रही है उसके आधार पर चल रहा है। बुद्धि होती है वहाँ अहंकार होता ही है। मन होता है, वहाँ अहंकार हो भी सकता है या नहीं भी।

अंत:करण बिना नहीं होता कोई कार्य

प्रश्नकर्ता : ये पढ़ना, समझना, बोलना - इनमें अंत:करण में किस-किस के कार्य समाते हैं?

दादाश्री : सभी कार्य अंत:करण के हैं। अंत:करण की मदद के बिना कुछ भी नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : इसमें अक्षर पढ़ने का काम किसका है?

दादाश्री : पढ़ना? वह सब चित्त का काम है। शुद्ध होता है, उस अनुसार सब काम होता है।

प्रश्नकर्ता : फिर समझ में आना, वह किसका काम है?

दादाश्री : वह बुद्धि का काम है।

प्रश्नकर्ता : और उसी समय ये शब्द निकलते हैं?

दादाश्री : वह सब अहंकार का काम है।

प्रश्नकर्ता : तो मन का क्या काम रहा?

दादाश्री : मन इसमें भाग नहीं लेता। मन, उसका अलग रहता है। उसका वोट (मत) अलग। यह तो चित्त, बुद्धि और अहंकार तीनों वोट एक तरफ और एक वोट उसका, सिर्फ मन का अलग। जिसका वोट जीतना है, उसकी तरफ तीन होते हैं।

बुद्धि जिसमें एकाकार हो, उसका कार्य होता है

प्रश्नकर्ता : बुद्धि और अहंकार, दोनों का सम्मिलित डिसिज़न रहता है। यदि वह मन में एकाकार हो जाए तो मन का कार्य होता

है और चित्त में एकाकार हो जाए तो चित्त का कार्य होता है। ऐसा हुआ न?

दादाश्री : हाँ, चारों में से तीन जिसमें मिल जाते हैं न, वह कार्य हो जाता है। कभी रात को जाग गए हों तब मन को संयोगी प्रमाण मिल जाए तो मन उस समय विचारणा में लग जाता है। (तब) जो संयोगी प्रमाण मिला उसके लिए टाइमिंग की कमी थी, लेकिन वह मिला कि फूटा। इसलिए हमें उस तरह के विचार आते रहते हैं। उस समय ऐसे बिज़नेस के विचार नहीं आते, लेकिन वह जिस तरह का है उस तरह के विचार आते हैं, उसे मन कहते हैं। जब मन शुरू होता है तो वहाँ पर चित्त, यदि बाहर की कोई बात हो तो फिर चित्त वहाँ जाता है और घर से संबंधित हो तो घर में नीचे जाता है, ऊपर जाता है, चित्त उस समय घूमता रहता है। तब बुद्धि डिसिज़न लेने की तैयारी करती है। अब यदि चित्त इसमें सहमत न हो, चित्त विरोधी हो गया हो, तब बुद्धि मन से मिल जाती है। मन के विचार और बुद्धि एक हो जाएँ तो अहंकार हस्ताक्षर कर देता है। बुद्धि जिसके साथ मिल जाती है अहंकार वहाँ हस्ताक्षर कर देता है। इस तरह से पार्लियामेन्ट हैं चारों की! उनमें से यदि चित्त वहाँ से हट गया हो तो उसका विरोध करके और काम आगे चलता रहता है। अहंकार तो सिर्फ, जहाँ बुद्धि कहे वहाँ हस्ताक्षर कर देता है, वह उसका नियम है। या फिर कभी चित्त को अच्छा लगे कि वह यात्रा मुझे बहुत अच्छी लगी थी तब यदि बुद्धि उसमें सहमत हो जाए, बुद्धि एक्सेप्ट (स्वीकार) करे यानी डिसाइड (निर्णय) करे तो तीनों एक तरफ हो जाते हैं तब मन अकेला रह जाता है।

यानी कि यों तो अंदर सभी बातें चलती रहती हैं लेकिन किसी चीज़ का डिसिज़न लिया हो तो वह पार्लियामेन्टरी डिसिज़न होता है। अंत:करण अर्थात् पार्लियामेन्ट पद्धति! मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, चार मेम्बरों (सदस्यों) की पार्लियामेन्ट चलती है अंदर। इन चारों में

बहुमत से कार्य होता है। इसमें अहंकार प्रेसिडेन्ट है, बुद्धि प्रधानमंत्री है और वे दोनों वोट देने वाले हैं।

ये मन और चित्त, दो हैं। बुद्धि इन दोनों में से एक के पक्ष में सहमत होती है। बुद्धि को ठीक लगे तो मन के पक्ष में सहमत होती है तब चित्त को छोड़ देती है और चित्त के पक्ष में हो तो मन को छोड़ देती है, यानी वे दोनों (बुद्धि और अहंकार) अचानक सहमत (तीसरे के साथ) हो जाते हैं। जहाँ बुद्धि सहमत हो जाती है वहाँ अहंकार साथ ही होता है। इसलिए वोटिंग बढ़ जाती है न, उनकी? एक तरफ एक और दूसरी तरफ तीन, जहाँ पर तीन हो जाते हैं उसका कार्य हो जाता है अंदर। इस अनुसार होता रहता है।

बुद्धि प्रकाश वाली है और जहाँ बुद्धि दौड़ती है न, अहंकार तुरंत ही वहाँ पहुँच जाता है। क्योंकि अहंकार खुद अंधा है इसलिए बुद्धि के बिना उसका चल नहीं सकता। वह बुद्धि की आँखों से ही देखता रहता है। सिर्फ प्रेसिडेन्ट कहलाता है इतना ही है, बाकी सत्ता बुद्धि के हाथ में है। मन-वन किसी का नहीं चलता। बुद्धि हो न, वहाँ पर किसी का भी नहीं चलता।

प्रश्नकर्ता : ऐसा हो सकता है न, कि किसी चीज़ पर अहंकार के हस्ताक्षर नहीं हुए लेकिन बुद्धि ने डिसिज़न ले लिया, फिर उस दस्तावेज का क्या?

दादाश्री : नहीं। (बुद्धि ने) डिसिज़न ले लिया न, तो उस पर अहंकार के हस्ताक्षर हो ही जाते हैं। इसलिए वह कार्य हो जाता है। यदि अहंकार अलग हो गया हो और बुद्धि अकेली रह गई हो तो वह होगी विधवा की स्थिति में। प्रेसिडेन्ट नहीं हो तो विधवा जैसी ही होगी न!

कभी मन मना करता है, तो कभी चित्त मना करता है। बाकी, अहंकार तो हमेशा बुद्धि के साथ ही रहता है, अकेला नहीं रहता। अकेला अहंकार बुद्धि से अलग नहीं होता। बुद्धि और अहंकार हो

सके तब तक अलग नहीं होते। कभी-कभार अलग होते हैं। बुद्धि के साथ तो अहंकार की सहमति होती है। अब उस सहमति से अलग हो जाना, उसे पुरुषार्थ कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि और अहंकार को अलग करना, वह पुरुषार्थ है?

दादाश्री : वह पुरुषार्थ है। वह व्यवहारिक पुरुषार्थ है।

इस तरह होती है इच्छा प्रकट

प्रश्नकर्ता : इच्छा और मन के बीच क्या फर्क है?

दादाश्री : मन में जब विचार आते हैं तब फिर बुद्धि निरीक्षण करती है कि इसमें सही क्या है? गलत क्या है? उसके बाद इच्छा की शुरुआत होती है। बुद्धि उसका पृथक्करण करती है, कि सही क्या है? अच्छा क्या है? उसके बाद इच्छा प्रकट करती है।

हलवाई की दुकान पर हमने सबकुछ देखा उस समय मन सोच में पड़ जाता है कि यह लेंगे, वह लेंगे और वह लेंगे। फिर बुद्धि डिसिज़न लेती है, कि इतने ही पैसे हैं। ऐसे सारा विश्लेषण करने के बाद फिर लेना तय करती है। तब इच्छा उत्पन्न होती है, कि यह ले लो। यानी कि अंदर अंत:करण में यह सारा संचालन चलता रहता है और फिर बाह्यकरण में सब उसी अनुसार होता है।

अंत:करण कब बंद होता है?

प्रश्नकर्ता : अंतरशांति में अंत:करण काम ही नहीं करता है? बंद हो जाता है?

दादाश्री : वह बंद नहीं होता। लेकिन उसे खुद को समझ में नहीं आता इसलिए फिर ऐसा कहते हैं कि बंद हो गया। अंत:करण तो किसी का भी बंद नहीं होता। नशा किया हो तब बंद हो जाता है या फिर डॉक्टर वह देता है न! क्या?

प्रश्नकर्ता : एनेस्थीसिया।

दादाश्री : हाँ, तब बंद हो जाता है। गांजे की चिलम पीते हैं उस समय अंत:करण बंद हो जाता है। नशा अंत:करण को बंद कर देता है। इसलिए फिर मज़ा आता है। अंत:करण दखल देता है न, वह दखल बंद हो जाता है। फिर नशे ही नशे में दिन बिताता है। तुझे नशा चढ़ा है कभी?

प्रश्नकर्ता : खाना खाने से नशा चढ़ा है। बाकी, नशा-वशा नहीं किया कोई भी।

दादाश्री : खाना खाने का ही नशा चढ़ता है या जानने का भी नशा चढ़ता है? कुछ जाना हो तो उसका भी नशा चढ़ता है क्या?

प्रश्नकर्ता : पता नहीं। मन शांत हो जाएँ, बुद्धि काम नहीं करे, चित्त कहीं भी नहीं भटके, अहंकार नहीं उछले, ऐसी अवस्था आ सकती है क्या?

दादाश्री : अंत:करण बंद नहीं होता। इन चारों में से एक तो चल ही रहा होता है। चित्त नहीं भटक रहा हो तब अंदर मन चल ही रहा होता है। मन नहीं चल रहा हो तो बुद्धि उल्टा-सीधा करती रहती है, नहीं तो अहंकार! लेकिन नशे में यह सब बंद हो जाता है। नशा ऐसी चीज़ है कि बंद करवा देती है। अंदर चल रहा हो फिर भी नशे की वजह से पता नहीं चलता। यानी हम कहते हैं कि बंद हो जाता है, पर यह तो बंद होता ही नहीं। साँस लेने के साथ मन चलता ही रहता है। जितने समय तक साँस बंद रखता है उतने समय तक मन स्थिर रहता है।

प्रश्नकर्ता : नहीं, ऐसा नहीं। आपने ऐसा कहा कि जब साँस रोकता है तब मन बंद हो जाता है, लेकिन उस समय बाकी सब तो चालू रह सकता है न?

दादाश्री : हाँ, उस समय फिर अहंकार स्थिर करने में लग गया होता है!

प्रश्नकर्ता : आजकल के संत अंत:करण की स्थिरता के लिए नामस्मरण पर इतना जोर क्यों देते हैं?

दादाश्री : नामस्मरण तो, अभी अन्य कोई उपाय नहीं है। इतने दु:खों में कोई नामस्मरण करे न, तो कुछ शांति, कुछ ठंडक रहती है। क्योंकि, नामस्मरण करते समय मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, सभी शांत रहते हैं और अंदर शक्ति आती है।

कोमा में अंत:करण की स्थिति

प्रश्नकर्ता : कोमा में है वह कौन सी दशा कही जाती है? कोमा में दिमाग़ तो काम करता होगा न? मन चलता ही होगा न?

दादाश्री : बंद रहता है। मन-बुद्धि-चित्त व अहंकार, ये सब बंद हो जाते हैं। सिर्फ आयुष्य कर्म बाकी रहता है और भयंकर अशाता वेदनीय कर्म भोगता है तब।

हिप्नोटाइज़ का असर किस पर?

प्रश्नकर्ता : मनुष्य को हिप्नोटाइज़ करते हैं, उसका असर किस पर होता है? मन पर होता है या चित्त पर होता है?

दादाश्री : मन और चित्त, दोनों पर।

ये लोग जो हिप्नोटाइज़ करते हैं, वह अंत:करण पर होता है। अंत:करण के सभी भागों को वश में कर लेते हैं। पहले चित्त को वश में कर लेते हैं, फिर बाकी के वश हो जाते हैं। अंत:करण पर असर होता है इसलिए बाह्यकरण पर असर होता है। पहले अंत:करण पर असर होता है। मन शून्य हो जाता है, इसलिए बाह्यकरण उसके (हिप्नोटाइज़ करने वाले के) कहे अनुसार बरतता है।

इन्द्रियों का नियंत्रण मन के हाथ में

प्रश्नकर्ता : शरीर और मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार, इन सब में क्या संबंध है?

दादाश्री : शरीर जो है, उसके साथ पाँच इन्द्रियाँ हैं; उन सब का नियंत्रण मन के हाथ में है। यह मन आँखों से ऐसा कहे कि देखने जैसा है, तो आँखें तुरंत देख लेती हैं और अगर मन मना करे तो आँखें देख रही हों फिर भी बंद हो जाती हैं।

प्रश्नकर्ता : कई बार मन अंदर से कहता है कि नहीं देखना है, फिर भी देख लेते हैं।

दादाश्री : देख लेते हो, वह तो इन्द्रियों का मूल स्वभाव है। लेकिन यदि मन कहे कि नहीं देखना है तो आँखें फिर से देखेंगी ही नहीं। वह तो इन्द्रियों का स्वभाव है। इन्द्रियाँ तो लालायित ही रहती हैं। लेकिन यदि मन मना कर दे तो आँखें फिर से देखेंगी ही नहीं।

मन के ऊपर बुद्धि, बुद्धि पर अहंकार का नियंत्रण

अब यह समझना है कि मन पर किसका नियंत्रण है। आपके मन पर किसका नियंत्रण है?

प्रश्नकर्ता : बुद्धि का।

दादाश्री : बुद्धि क्या करती है?

प्रश्नकर्ता : सार-असार का भेद बताती है।

दादाश्री : हाँ, क्या बुद्धि की इच्छानुसार होता है?

प्रश्नकर्ता : नहीं होता।

दादाश्री : तो बुद्धि पर किसका नियंत्रण है?

प्रश्नकर्ता : बुद्धि से ऊपर कोई है लेकिन पता नहीं चलता।

दादाश्री : अहंकार का, और किसका?

प्रश्नकर्ता : लेकिन फिर ये जो मनोवैज्ञानिक व्यापार हैं, बोलना, चलना, सोचना, व्यवहार करना, ये कौन उत्पन्न करता है?

दादाश्री : यह सब तो अहंकार करता है। इसमें आपको ऐसा सारा पृथक्करण समझ में आया? ये जो सारी क्रियाएँ होती हैं वे एक ही चीज़ में होती हैं, उसे हम अंत:करण कहते हैं। ये सारी क्रियाएँ अंत:करण में हो रही हैं। एक बार में एक, मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, अपने-अपने फंक्शन (कार्य) में रहते हैं। अब, जब तक हम इस फंक्शन में काम करते रहते हैं, तब तक 'हम कौन हैं' वह हमें पता नहीं चलता। इस फंक्शन से बाहर निकलने पर पता चलता है कि 'हम कौन हैं'। लेकिन उस फंक्शन से बाहर जाने ही नहीं देता। वह फंक्शन ऐसा है। पल भर के लिए भी, किसी को भी अंत:करण से बाहर जाने ही नहीं देता। वह मन भी ऐसा है, बुद्धि भी ऐसी है, चित्त भी ऐसा है और अहंकार भी ऐसा है।

नियंत्रण खुद के हाथ में आए, तो होगा पुरुषार्थ

मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार, अंत:करण के चार भाग हैं। इस शरीर पर इन चारों का नियंत्रण है और इन चारों का नियंत्रण है इसलिए यह भ्रांति रही हुई है। खुद के हाथ में नियंत्रण आ जाए तो फिर यह झंझट नहीं रहेगी, पुरुषार्थ उत्पन्न हो जाएगा।

प्रश्नकर्ता : वह पुरुषार्थ हाथ में आए उसके लिए क्या करना होगा?

दादाश्री : वह सब हम यहाँ पर कर देते हैं।

प्रश्नकर्ता : जिनके पास आप नहीं हैं, वे क्या करेंगे?

दादाश्री : वे तो, उन्हें जितना आए, जैसा समझ में आए

वैसा करते रहेंगे। यह तो आपकी जो भावना है कि ऐसा हो जाए तो अच्छा, हम वैसा कर देते हैं। इन सभी का कर दिया है न! क्योंकि अगर आप से कहूँगा तो आप से हो पाए ऐसा नहीं है। आज के कलियुग के मनुष्यों में इतनी शक्ति नहीं है। कलियुग के मनुष्य इस अनुसार नहीं कर सकते। इसीलिए फिसल पड़े हैं अभी। फिसलते-फिसलते अभी कलियुग में आए हैं। अब जितना फिसल गए है उतना उनसे चढ़ा जा सके ऐसा है ही नहीं। कई रास्ते दिखाने पर भी नहीं चढ़ा जा सके, ऐसा है। उसके लिए तो कोई और हेल्प करनी पड़ेगी।

यानी कि जो मुक्त हैं, बंधन मुक्त हो गए हैं, वे ही आपको बंधन मुक्त कर सकते हैं। वर्ना कोई नहीं कर सकता। जो मुक्त पुरुष हैं वे ही आपको मुक्त कर सकते हैं। जो खुद बंधा हुआ हो वह आपको कैसे मुक्त कर सकेगा?

❖❖❖❖❖

[3]
'उनका' स्वरूप और देह में स्थान

चारों ही रूपी, लेकिन चक्षुगम्य नहीं, ज्ञानगम्य

सारी दुनिया जिस साइन्स की खोज में है, उस साइन्स का सर्व प्रथम संपूर्ण स्पष्टीकरण हम देते हैं। मन को समझना बहुत मुश्किल है। मन क्या है? बुद्धि क्या है? चित्त क्या है? अहंकार क्या है? उन सभी का यथार्थ स्पष्टीकरण हम देते हैं।

चारों रूपी हैं और पढ़े जा सकें ऐसे हैं। चक्षुगम्य नहीं हैं, ज्ञानगम्य हैं। फिज़िकल हैं। शुद्ध आत्मा से उनका कोई लेना-देना नहीं है। वह पूर्णतया अलग ही है। हम पूर्ण रूप से अलग हैं, इसलिए उनका यथार्थ वर्णन कर सकते हैं।

मन लगे चेतन जैसा, लेकिन है निश्चेतन चेतन

प्रश्नकर्ता : दादा, मन जीवित चेतन हो, इस तरह कई बार अपने साथ दलील करता है।

दादाश्री : मन क्या है? वह निश्चेतन चेतन है। सिर्फ निश्चेतन है ऐसा नहीं कहता, निश्चेतन चेतन है। वह चेतन नहीं लेकिन वह निश्चेतन चेतन है। इसका अर्थ क्या है?

प्रश्नकर्ता : आप बताइए।

दादाश्री : वह चेतन जैसा लगता ज़रूर है लेकिन वास्तव में वह चेतन नहीं है। सारे लक्षण चेतन के जैसे ही हैं लेकिन सारे डिस्चार्ज रूपी हैं। कोई भी चीज़ को चार्ज करने के बाद, वह डिस्चार्ज होती है उस समय क्या उसके लक्षण चेतन जैसे नहीं दिखाई देते? ये जो आतिशबाजी के पटाखे होते हैं, वे दुकान में पड़े रहते हैं, तब तक क्या वे उछल-कूद करते हैं? फिर हम उन्हें जलाते हैं तब?

प्रश्नकर्ता : तब वे उछल-कूद करते हैं।

दादाश्री : तो क्या उस समय उनमें चेतन होता है? चेतन जैसा दिखाई देता है लेकिन चेतन नहीं है वह। उसी तरह यह चेतन जैसा दिखाई देता है लेकिन चेतन नहीं है। इस शरीर में रात भर मशीनरी चलती है, क्या आपको पता है? आपको पता नहीं है फिर भी चलती है न?

बुद्धि-चित्त-अहंकार मिश्रचेतन

प्रश्नकर्ता : यह शरीर वह फिज़िकल है, तो ये मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार वे भी फिज़िकल हैं?

दादाश्री : सिर्फ मन ही कम्प्लीट फिज़िकल कहलाता है। बाकी सब तो मिश्रचेतन कहलाते हैं। मिश्रचेतन का अर्थ क्या है? पावर चेतन। जिसमें पावर भरा हुआ है। जब तक यह पावर है तब तक वह काम करेगा और पावर नहीं रहेगा तब खत्म हो जाएगा। यानी कि पावर है तब तक चित्त और बुद्धि वे सभी काम करते हैं। जबकि मन तो खुद फिज़िकल है। उसे किसी पावर की ज़रूरत नहीं है।

आत्मा की उपस्थिति से भरता है पावर

प्रश्नकर्ता : बुद्धि और चित्त जड़ नहीं कहलाएँगे?

दादाश्री : बुद्धि और चित्त बिल्कुल जड़ नहीं हैं, पावर चेतन हैं। अत: चेतन जैसा ही काम करते हैं लेकिन चेतन नहीं हैं। जैसे

बैटरी में पावर होता है न, उसमें अंदर पावर डालते हैं, तो इस तरह दबाने से लाइट होती है। कब तक? तो कहते हैं, पावर है तब तक। पावर खत्म होने के बाद में लाइट नहीं होती। यह भरा हुआ पावर है, जो काम कर रहा है। इस पावर के खत्म हो जाने के बाद मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार कुछ भी काम नहीं करेंगे। फिर से दूसरा पावर भरा कि बैटरी फिर से शुरू हो जाएगी जबकि आत्मा तो वैसे का वैसा ही रहता है। उसकी उपस्थिति में यह पावर भरता है। पावर भरने की कोई मशीनरी-वशीनरी कुछ भी नहीं है, सिर्फ उपस्थिति से ही पावर भर जाता है!

प्रश्नकर्ता : आपने कहा है कि, मन फिज़िकल भी है और पावर चेतन भी है। तो यह पावर वाला किस प्रकार से है?

दादाश्री : पावर कहना हो तो कह सकते हैं लेकिन डिस्चार्ज पावर है। बाकी, मन फिज़िकल है, मन नया नहीं कर सकता। बुद्धि नया कर सकती है।

प्रश्नकर्ता : नया नहीं कर सकता इसलिए फिज़िकल है?

दादाश्री : डिस्चार्ज, वह डिस्चार्ज पावर है। कुछ भी चार्ज नहीं कर सकता। और फिज़िकल है। जबकि बाकी सब मिश्रचेतन कहलाते हैं।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि-चित्त-अहंकार।

दादाश्री : मिश्रचेतन। अहंकार भी। मिश्रचेतन में चेतन नाममात्र भी नहीं है। लेकिन मिश्रचेतन यानी उसमें भाव डाले गए हैं, उससे वह ऐसा हुआ है। उन भाव का हम *निकाल* (निपटारा) कर देंगे, तो वह साफ होकर चला जाएगा।

बुद्धि तो मिश्रचेतन है। यानी उसमें पावर भरा हुआ है। यह मन, वह पावर भरा हुआ नहीं है। वह तो, जैसे हम कोई चीज़ ले आते हैं न, उसके बाद वह डिस्चार्ज होती रहती है न? उसमें बदलाव

होता रहता है न निरंतर? चीज़ अपने बदलाव की भजना करती है न? वह उसका इफेक्ट है। उसी तरह यह मन जो है वह अपने बदलाव की भजना करता रहता है और खुद विलय होता जाता है। बदलाव होकर फिर विलय होता जाता है।

अंतःकरण की क्रियाएँ मिश्रचेतन की

प्रश्नकर्ता : अंतःकरण की क्रियाएँ, वे निश्चेतन चेतन की हैं या मिश्रचेतन की?

दादाश्री : वह मिश्रचेतन हैं, निश्चेतन चेतन नहीं हैं। यह पूरा शरीर ही निश्चेतन चेतन है, खाते हैं, पीते हैं, ये श्वास लेते हैं, देखते हैं, करते हैं, सुनते हैं, वह सब। पेट में दुःखता रहता है, खाना पचता रहता है, संडास वगैरह वह सब निश्चेतन चेतन हैं। इनमें चेतन जैसी चीज़ नहीं है।

बुद्धि के अलावा तीनों ही पुद्गल

मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, ये सब अंतःकरण का हिसाब हैं। ये सब *पुद्गल* हैं। शुद्धात्मा के अलावा बाकी सब *पुद्गल* हैं। सिर्फ बुद्धि *पुद्गल* नहीं है। बुद्धि तो इसका ही प्रकाश है, आत्मा का प्रकाश लेकिन अहंकार के थ्रू (द्वारा) आता है न, इसलिए उसे बुद्धि कहते हैं। बीच में अहंकार का मीडियम (माध्यम) है, उसके माध्यम से आता है इसलिए उसे बुद्धि कहा है। *पुद्गल* हो तब तो वह *पूरण* हुआ *गलन* हो जाता है।

प्रश्नकर्ता : बुद्धि के परमाणु होते हैं क्या?

दादाश्री : जिन्हें प्रकाश के परमाणु कहते हैं न, वे परमाणु कहलाते हैं लेकिन *पूरण-गलन* नहीं होते। *पूरण-गलन* को *पुद्गल* कहते हैं। मन *पूरण-गलन* कहलाता है, अहंकार *पूरण-गलन* कहलाता है, चित्त भी *पूरण-गलन* कहलाता है लेकिन बुद्धि वह *पूरण-गलन* नहीं कहलाती। बुद्धि तो प्रकाश है। यह प्रकाश अहंकार के मीडियम

(माध्यम) थ्रू आता है। एक लाल कपड़ा रख दें, तो नीचे लाल प्रकाश आता है लेकिन प्रकाश तो मूल आत्मा का ही है न!

प्रश्नकर्ता : चित्त किस प्रकार से *पुद्गल* है?

दादाश्री : शुद्ध चित्त को तो आत्मा कहते हैं। तो चित्त किसे कहते हैं? अशुद्ध चित्त को चित्त कहते हैं। उस अशुद्ध चित्त का *गलन* हो जाता है। हम ज्ञान देते हैं तब अशुद्ध चित्त का *गलन* हो जाता है। थोड़ा-बहुत रह जाए तो वह भी कुछ समय में चला जाता है।

मन-चित्त-अहंकार सब परमाणुओं से बने हुए हैं। यानी ये जड़ तत्त्व से बने हुए हैं, ये चेतन नहीं हैं। इनमें बदलाव होता है। इसलिए ये फिज़िकल चीज़ें हैं। बुद्धि फिज़िकल नहीं है। बुद्धि इन्डिरेक्ट प्रकाश है, रिलेटिव चीज़ है, स्वयं प्रकाश नहीं है।

उनका वजन हैं

प्रश्नकर्ता : मन का वजन है?

दादाश्री : हाँ, मन का वजन है। लेकिन थोड़ा-बहुत, बहुत कम। अहंकार का वजन है, चित्त का वजन है।

प्रश्नकर्ता : तो इसका अर्थ यह है कि चित्त फिज़िकल है?

दादाश्री : नहीं। चित्त आधा चैतन्य है, मिश्रचेतन है और अशुद्ध हो गया है न, इसलिए वजनदार हो गया है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि उस अशुद्धि की वजह से ही वजन है?

दादाश्री : हाँ। जिन्होंने ज्ञान नहीं लिया है न, उन लोगों के लिए आत्मा का वजन कम करके बताना हो तो उसे दो-तीन ग्राम घटाना पड़ेगा। क्योंकि उनका (व्यवहार) आत्मा वजनदार है, दो-तीन ग्राम का।

शरीर में मन का स्थान

प्रश्नकर्ता : तो फिर इन चार चीज़ों (मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार)

का शरीर में कोई विशिष्ट स्थान हैं या (इनके बारे में) समझ दी गई है?

दादाश्री : नहीं, विशिष्ट स्थान हैं। स्थान हैं सभी के। मन, वह खुद सूक्ष्म रूप में भी है और स्थूल रूप में भी है। उसके विशिष्ट स्थान हैं।

प्रश्नकर्ता : मन का स्थान कहाँ है?

दादाश्री : मन के दो प्रकार हैं, स्थूल मन और सूक्ष्म मन। अन्य शब्दों में, सूक्ष्म मन को 'भाव मन' और स्थूल मन को 'द्रव्य मन' कहते हैं, कारण मन और कार्य मन। भाव मन का स्थान कपाल में, सेन्टर में, भौंहों से ढाई इंच (अंदर) की दूरी पर रहा है जबकि स्थूल मन हृदय में है। स्थूल मन पंखुड़ियों वाला है। इसलिए ही, कई लोग कहते हैं कि, मेरा दिल कबूल नहीं करता। कुछ दहशत हो, तब दिल में खलबली मच जाती है। वह द्रव्य मन है। द्रव्य मन कम्प्लीट इफेक्ट है, डिस्चार्ज स्वरूप है। जबकि भाव मन कॉज़ेज़ उत्पन्न करता है। वह चार्ज करता है।

भाव मन सहेतुक है। इसलिए नये बीज पड़ते हैं। हेतु पर से भाव मन पकड़ में आता है, पर उस हेतु को देखने वाली दृष्टि खुद में होती नहीं है न! जब 'खुद' शुद्धात्मा हो जाता है और पूर्ण रूप से निष्पक्षपातीपना उत्पन्न हो जाता है और मन को कम्प्लीट अलग, फिल्म की तरह देख सकता है, तभी भाव मन क्या है, वह समझ में आता है। भाव मन तक तो सर्वज्ञ के अलावा कोई पहुँच ही नहीं सकता। ज्ञानी पुरुष जो सर्वज्ञ हैं, वे आपके भाव मन को बंद कर देते हैं। इसलिए नया मन चार्ज नहीं होता और केवल डिस्चार्ज मन ही रहता है। अतः फिर उसके इफेक्ट को ही देखना और जानना है।

ये अंग्रेज, जिसे सबकॉन्शियस और कॉन्शियस माइन्ड कहते हैं, वह सारा ही स्थूल मन हैं। सूक्ष्म मन का एक परमाणु भी किसी से

पकड़ा जाए ऐसा नहीं है। वह तो ज्ञानी पुरुष का ही काम है क्योंकि वह ज्ञानगम्य है।

प्रश्नकर्ता : अब क्या मन और हृदय दोनों अलग-अलग हैं?

दादाश्री : नहीं, हृदय के अंदर ही मन है। लेकिन मन का फंक्शन (कार्य) अलग है और हृदय का फंक्शन अलग है। उसकी (मन) जगह और कार्य वहीं पर है।

चित्त का स्थान

अत: चित्त का स्थान कहाँ है? आपकी चोटी है न, वहाँ पर है, पीछे सिर में चोटी वाला जो भ्रमर होता है न, वहाँ पर है। वहाँ चित्त का स्थान है, स्थूल चित्त।

प्रश्नकर्ता : सूक्ष्म चित्त का स्थान कहाँ है?

दादाश्री : सूक्ष्म चित्त तो बुद्धि के साथ रहता है। यानी कि अरूपी है। और बुद्धि, वह भी रूपी नहीं है, एक तरह का प्रकाश है। चित्त भी एक तरह का प्रकाश है लेकिन वह अशुद्ध प्रकाश है। भ्रांति से जो ज्ञान होता है वह सारा अशुद्ध प्रकाश है। इस चित्त को शुद्ध करने से मोक्ष होता है। चित्त चैतन्य है, ऐसा किस आधार पर? चित्त अशुद्ध हो जाए तो पावर चैतन्य और चित्त शुद्ध हो जाए तो संपूर्ण चेतन!

बुद्धि-अहंकार का स्थान

अब जो अपना दशम स्थान है न, जिसे तालू कहते हैं न, जहाँ घी लगाते हैं, वहाँ पर बुद्धि का स्थान है। बुद्धि की फोटो ली जा सकती है, बुद्धि ऐसी है। बुद्धि जहाँ से प्रकाशमान होती है, उस बैटरी की फोटो ली जा सकती है। और मन तो इन दो भौंहों के बीच ढाई इंच अंदर की तरफ है। उसकी फोटो ली जा सकती है। और अहंकार कहाँ पर है? वह यहाँ पीछे कमर के नीचे है। बच्चों को 'शाबाश' कहकर नीचे की तरफ पीछे पीठ थपथपाते हो न, तब आप उसके

अहंकार को एन्करेज (प्रोत्साहित) करते हो। फिर वह खिलता है। अहंकार की जगह वहाँ पर होने से उसी जगह पर थपथपाना चाहिए। शाबाशी देनी पड़ती है। जो महान पुरुष हाथ से थपथपाते हैं न, 'जाओ, काम शुरू करो', उस समय हाथ वहीं पर पड़ता है। वह अहंकार तक पहुँचता है और उसकी एक्ज़ेक्ट (हूबहू) फोटो ली जा सकती है। कैमरे में फोटो आ सकती है।

उनकी फोटो ले सकते हैं

प्रश्नकर्ता : आपने ये जो मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार के स्थान बताए, वैज्ञानिकों के डेस्टिनेशन (स्थान) के अनुसार, इन सभी जगह पर ऐसे सेल हैं कम्प्यूटर जैसे, जो दी गई सूचनाओं को इकट्ठा (संग्रह) करते हैं और ज़रूरत पड़ने पर बाहर निकालते हैं, तो अब इसमें विचारों का डिस्टिंग्विश (अलग करना) वैज्ञानिकों की दृष्टि से और आपकी दृष्टि से अलग है तो क्या उन लोगों की बात बिल्कुल ही गलत है, वैज्ञानिकों की?

दादाश्री : नहीं, बात गलत नहीं है उन्हें ऐसा लगता है। जैसे कई लोग मानते हैं 'गॉड इज़ क्रिएटर', तो वह उनका दृष्टिबिंदु है। वैसे ही इन्हें लगता है कि ऐसा होना चाहिए। और उस समय उस बारे में उनकी कुछ बातें सही भी निकलती हैं। क्योंकि उनकी फोटो ली जा सकती हैं। उनकी सूक्ष्म फोटो ली जा सके ऐसा हैं। ये लोग (वैज्ञानिक) समझ सकते हैं। क्योंकि यह सब उन्हें गिफ्ट (भेंट) हैं। वे ज्ञानी नहीं हैं फिर भी गिफ्ट है उनके पास। इस गिफ्ट से दर्शन में दिखाई देता है। हाँ, इसलिए सब सूझ पड़ जाती हैं।

प्रश्नकर्ता : अब मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, इन चारों को ही यों हम चार मानते तो ज़रूर हैं लेकिन क्या यह एक ही शक्ति का अलग-अलग प्रकार से आविष्कार होता है?

दादाश्री : ऐसा नहीं है। एक्ज़ेक्टली (वास्तव में) स्थूल में भी चार हैं। उसमें स्थूल से सूक्ष्म तक का पूरा भाग है। चित्त स्थूल भी

है और सूक्ष्म भी है। उस स्थूल में अंदर सूक्ष्म रहा हुआ है। स्थूल अर्थात् उसकी फोटो ली जा सकती है। अहंकार की भी फोटो ली जा सकती है। उसे ये लोग 'चक्र' कहते हैं।

प्रश्नकर्ता : चित्त का फोटो लिया जा सकता है लेकिन चित्त तो ज्ञान-दर्शन स्वरूप है न?

दादाश्री : ज्ञान-दर्शन स्वरूप है लेकिन जो बैटरी है न, उस बैटरी की फोटो ली जा सकती है; यानी कि जिस बैटरी से चार्ज होता है न वह!

प्रश्नकर्ता : चित्त जो स्थूल रूप में है वह यहाँ पर (पीछे चोटी के पास) है और सूक्ष्म भाग जो बाहर जाता है, तो उसकी फोटो कैसे ली जा सकती है?

दादाश्री : उसकी जो बैटरी है न, चित्त वह बैटरी स्वरूप है कि जिसमें से वह चार्ज हो रहा है। यदि वह न हो तो चित्त चार्ज नहीं होता। तो वह चित्त का बैटरी स्वरूप है। उस बैटरी में से एविडेन्स मिलते हैं तब डिस्चार्ज होता है और डिस्चार्ज होता है तब यहाँ से रामेश्वर जाता है। एविडेन्स मिले तो रामेश्वर जाता है, इसका अर्थ यह नहीं कि चित्त यहाँ से चला गया है। जैसे यह लाइट है लेकिन इसका तेज बाहर जाता है न, उसी तरह से यह चित्त बाहर जाता है और वह सूक्ष्म है। लेकिन वास्तव में स्थूल में से चित्त उत्पन्न हुआ है। यानी कि उस सूक्ष्म चित्त का फोटो लिया जा सकता है, वह चित्त दिमाग़ के पीछे वाले भाग में रहा हुआ है, किसी में वह उभार ज़्यादा होता है और किसी में कम होता है। वह चित्त का फोटो है।

❖❖❖❖❖

[4]

अंतःकरण की उत्क्रांति

जानवरों का अंतःकरण सीमित, मनुष्यों का असीम

प्रश्नकर्ता : ये मन-बुद्धि-चित्त व अहंकार और हृदय इन पाँच चीज़ों से मनुष्य का, सभी जीवों का चल रहा है?

दादाश्री : हाँ, पाँच से ही सबकुछ चल रहा है। जानवरों में मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार सबकुछ लिमिटेड (सीमित) होते हैं और मनुष्यों में अनलिमिटेड (असीम) होते हैं।

प्रश्नकर्ता : दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय जीव हैं, उनमें मन की गांठें हैं क्या? अंतःकरण है क्या?

दादाश्री : उनमें मन ही नहीं है। दो-तीन और चार इन्द्रिय तक मन नहीं है और पाँच इन्द्रिय वाले (जानवरों) में मन है लेकिन सीमित मन, लिमिटेड मन है।

ये गायें, भैंसें, गधे, ये सब पाँच इन्द्रिय जीव कहलाते हैं और हम भी पाँच इन्द्रिय जीव कहलाते हैं, लेकिन अपने में और ये दूसरे पाँच इन्द्रिय जीवों में अंतर क्या है? उनका अंतःकरण लिमिटेड है जबकि अपना अंतःकरण अनलिमिटेड है। यानी अपने मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार अनलिमिटेड हैं, उनके मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार

सब लिमिटेड हैं। यानी वे संज्ञा से समझते हैं, जबकि हम एक्ज़ेक्टनेस समझते हैं।

जानवरों का सीमित होने के कारण उनमें डेवलपमेन्ट अधिक नहीं हो सकता। इस गाय को बरतन दिखाएँ तो वह दौड़ती-दौड़ती आती है। उतनी उसे समझ है। साथ-साथ उसे दूसरी कौन-सी समझ है? यदि हम लकड़ी लेकर निकले हों तो वह पास में नहीं आती। इसके अलावा उसे नींद की समझ है। उनमें मैथुन है। भूख लगे तब खाने की समझ है। वे संज्ञाएँ हैं।

हर किसी में आहार, भय, मैथुन और निद्रा, ये चार संज्ञाएँ होती हैं। मनुष्य में ज़्यादा क्या है, कि अंत:करण फुल डेवेलप हो चुका है। इसलिए अनलिमिटेड मन है, जबकि उन आहार-भय-मैथुन-निद्रा वालों के सभी के मन लिमिटेड हैं। वे कुछ लिमिट से बाहर नहीं जा सकते, उन्हें संज्ञा कहा जाता है।

वे चार ही संज्ञा (आहार-मैथुन-निद्रा-भय) जानते हैं, सिर्फ उतना ही मन है उनका। उनमें अन्य कोई विशेष मन नहीं है। फिर भी कोई व्यक्ति बंदर को सिखाकर मन को विकसीत करे तो वह ज़रा आगे बढ़ेगा। परंतु सिर्फ मनुष्य ही ऐसा है कि जिसका मन अनलिमिटेड है। जितना उसे डेवेलप (विकसित) करना हो उतना हो सकता है। यानी कि मनुष्यों में मन की सीमा नहीं है। लेकिन जितना खिला उतना उसका! असीम तक पहुँच सके, ऐसा मन है। इन जानवरों में सीमित मन है। सीमित मन अर्थात् संज्ञा से समझ जाते हैं। जबकि आप तो संज्ञा बिना ही दूसरी बातें भी समझ जाते हो।

उनमें बुद्धि भी है लेकिन लिमिटेड है। चार संज्ञा जितनी ही उनकी बुद्धि काम करती है। यानी उनमें कैसी बुद्धि होती है? तब कहते हैं, हम बर्तन में कुछ लेकर डालने जाते हैं तो दूर से गाय समझ जाती है, कि ये कुछ डालने आए हैं। यह संज्ञा यानी बुद्धि है।

इतनी संज्ञा होती है। वहीं से ही समझ जाती है, कि ये कुछ डालने आए हैं।

भूख लगी हो, तो उसमें उनका चित्त होता है और विचार भी उसके आते हैं, भूख लगी उसके। बाकी गाय-भैंस को आँखें बंद करने पर कुछ भी नहीं दिखता। आप तो यहाँ बैठे-बैठे ऑफिस में क्या है, वह देख सकते हो। क्योंकि उनमें ऐसा चित्त नहीं है। उनका चित्त तो थोड़ा सा ही होता है। इसलिए उनके मन, बुद्धि, चित्त जो हैं, उन्हें संज्ञाएँ ही कहते हैं।

उनका अहंकार भी लिमिटेड है और डिस्चार्ज अहंकार है। चार्ज अहंकार यानी जीवित अहंकार नहीं है वह। यानी वह भुगतता ही है, डिस्चार्ज अहंकार, सिर्फ प्रारब्ध भुगतता है। बाघ, सिंह, गधा, कुत्ता वगैरह सभी जानवर प्रारब्ध भुगतते हैं।

अहंकार कब उत्पन्न होता है?

प्रश्नकर्ता : एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक में अहंकार कब उत्पन्न हो जाता है?

दादाश्री : वह तो जब मन लिमिटेड नहीं हो, बुद्धि लिमिटेड नहीं हो, चित्त और अंत:करण भी लिमिटेड नहीं हों, वह अनलिमिटेड हुआ, वहाँ पर अहंकार उत्पन्न होता है। सिर्फ इन मनुष्यों में ही और वह भी सिर्फ हिन्दुस्तान के मनुष्यों में ही! बाहर वालों में (दूसरे देश वालों में) तो अहंकार है ही नहीं बेचारों में! उनमें तो साधारण, बहुत कम अहंकार है।

प्रश्नकर्ता : थोड़ा-बहुत अहंकार तो होगा ही न?

दादाश्री : नहीं, उनमें बहुत कम, वह भी साहजिक अहंकार है जबकि अपने यहाँ तो अहंकार की सीमा ही नहीं है न! अपने यहाँ तो सात पीढ़ी तक का अहंकार है, 'मेरे बेटे का बेटा खाए और उसका बेटा भी खाए', उनके लिए इकट्ठा करते हैं।

अंत:करण का मनुष्य में विकासक्रम

जो एकेन्द्रिय जीव हैं न, उनमें मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार जैसी चीज़ें हैं ही नहीं। अब, दो इन्द्रियों से लेकर तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय जीवों में इन्द्रियों जितना ही भान है। उनमें भी मन या कुछ नहीं है। सिर्फ इन्द्रियों जितना ही, दो हों तो दो का भान, तीन हों तो तीन का भान। फिर चार इन्द्रियों से आगे पाँच इन्द्रियों वाले जीव हैं वे संज्ञा वाले हैं। उनमें संज्ञा जितना भान है। आहार, भय, मैथुन और निद्रा, इन चार संज्ञाओं वाले पाँच इन्द्रिय जीव हैं। और इनके अलावा पाँच इन्द्रिय वाले मनुष्य हैं।

अरे, अब मनुष्यों में भी चौदह लाख स्तर हैं! उसमें अफ्रिका में जो मनुष्य हैं न, वह फर्स्ट डेवेलपमेन्ट है मनुष्य का। और वहाँ से आगे बढ़ते, बढ़ते, बढ़ते आखिरी लास्ट डेवेलपमेन्ट इंडिया में है। तो ये अफ्रीका वाले हैं न, उनमें मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार सब हैं तो सही लेकिन अंडरडेवेलप्ड स्थिति में हैं। अभी ज़रा भी (कोंपल जितने भी) डेवेलप नहीं हुए। कोंपल जितने भी डेवेलप हुए होते न, तो हम उन्हें कहते कि, ये इनमें भी ज़रा से डेवेलप हुए हैं। अब उसमें से डेवेलपमेन्ट शुरू होते, होते, होते अपने यहाँ हिन्दुस्तान में आते हैं, तब उनमें मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार सभी फुली डेवेलप (पूर्ण विकसित) हो चुके होते हैं। बाकी जगह पर तो, हिन्दुस्तान के अलावा बाहर भी चित्त है तो सही लेकिन चित्त जैसी चीज़ को वे लोग समझ नहीं सकते। वहाँ पर उसका नाम भी नहीं दिया गया है। चित्त का अनुभव होता है लेकिन वे लोग उसे मन कहते हैं। मन में सब का समावेश करते हैं। हमने दोनों के अलग-अलग भाग किए हैं। क्योंकि यहाँ पर तो साइन्टिस्ट (वैज्ञानिक) लोग हैं न!

कर्मबंध, किस योनि में?

प्रश्नकर्ता : जीवात्मा उच्च योनि में से निम्न योनि में जाता है, मनुष्य में से गधे में चला जाता है। अब यह सब जो होता है इसे कैसे समझा जा सकता है?

दादाश्री : अंदर मन किस तरफ जा रहा है उस पर से उसका जाना तय होता है। मन गधे जैसा है या बैल जैसा है या देवता जैसा है वह क्या हमें पता नहीं चलता?

प्रश्नकर्ता : हाँ, यह बात सही है। लेकिन वे वहाँ गए हैं उसका हमें क्या प्रूफ (प्रमाण) मिल सकता है?

दादाश्री : इसका प्रूफ यही है कि जैसा मन है उसी अनुसार उसका रूप गढ़ा जा रहा है अंदर। आत्मा की उपस्थिति में मन जो-जो विचार करता है, और विचार कब कहलाता है कि उसमें अहंकार और बुद्धि एकाकार हो जाएँ तब विचार कहलाता है, कि इसका विचार आया, उससे प्रकृति बनती है। गधे जैसे विचार आएँ तो गधे जैसी, बैल जैसे विचार आएँ तो वैसी, देवता जैसे विचार आएँ तो देवता जैसी, सज्जनता के विचार आएँ तो सज्जन, अपने आप को गढ़ने वाला खुद ही है। और फिर वहाँ जाकर जब डेबिट (उधार) भुगत लेता है, तब फिर *निकाल* हो जाता है। वापस घर (मनुष्य में) जाओ आराम से।

सिर्फ मनुष्यों को ही कर्म बंधन होता है, जानवरों को कर्म नहीं बंधते। जानवरों में भी अंत:करण होता है लेकिन उनमें सबकुछ लिमिटेड होता है। मन लिमिटेड होता है, बुद्धि लिमिटेड होती है, चित्त लिमिटेड होता है और अहंकार भी लिमिटेड होता है। उस लिमिट से आगे जाता है तब कर्म बंधन होता है। हम मनुष्यों का अंत:करण अनलिमिटेड है इसलिए कर्म बंधन होता है। 'मैं चंदूलाल हूँ' ऐसा बोलकर सो गए तो रात भर कर्म बंधते रहते हैं।

अपने पास यह अनलिमिटेड है। इसका दुरुपयोग किया। फिर कहते हैं, 'मेरा माइन्ड निकाल दीजिए, ऑपरेशन कर दीजिए।' इससे फिर वह एब्सेन्ट माइन्डेड (शून्य मनस्क) हो जाएगा। एब्सेन्ट माइन्डेड हो गया तो यूज़लेस (बेकार) हो गया।

प्रश्नकर्ता : जानवर जैसा हो जाता है।

दादाश्री : नहीं। जानवरों में माइन्ड होता है, देखो ऐसा मत बोलना! मनुष्यों से भी अच्छा माइन्ड जानवरों में है अभी। मनुष्यों का माइन्ड असीम है और उनका सीमा वाला है। लेकिन ये असीम वालों ने दुरुपयोग करके उसकी सीमा भी बिगाड़ दी है।

जानवर तो बहुत अच्छी तरह रहते हैं। वे तो अपने बच्चों को पहचानते हैं। उन्हें पीछे देखकर वहाँ खड़े रह जाते हैं। अगर बच्चा नहीं आ रहा हो तो माँ खड़ी रहती है। वापस जाकर उसे ले आती है, ऐसा सब करती है। उनका मन काम करता है न!

बच्चे का अंत:करण

प्रश्नकर्ता : छोटे बच्चे में अंत:करण कैसे काम करता है?

दादाश्री : ऐसा है न, बच्चे का मन विकसित नहीं हुआ होता है। लेकिन उसमें चित्त होता है, उसे यदि खिलौने नहीं दें तो रोता है।

प्रश्नकर्ता : बच्चों की बुद्धि डेवेलप्ड (विकसित) थोड़ी होती है?

दादाश्री : नहीं, चित्त ही डेवेलप्ड होता है। अहंकार है तो सही लेकिन डेवेलप नहीं हुआ है। सिर्फ चित्त ही डेवेलप हुआ है। वह जो देखता है वहीं पर घूमता रहता है और नहीं मिले तो फिर रोता है। ऐसी कोई चीज़ देकर रखनी पड़ती है कि उसका चित्त उसमें रहा करे। लेकिन ऐसी कौन सी चीज़ है? एक चीज़ संख्यात रूप दिखाती हो तभी उसका चित्त उसमें टिका रहता है। लेकिन एक चीज़ एक ही रूप दिखाए फिर क्या होता है? एक ही देखकर फिर ऊब जाता है। थोड़ी देर बाद वही खिलौनों से फिर से खेलता है, लेकिन उस समय तो छोड़ देता है।

छोटे बच्चे का शरीर छोटा है इसलिए अंदर मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार पूरा काम नहीं कर सकते। तो फिर कैसे चलता है?

जब अंत:करण फुल (पूर्ण) काम करता है तब वह बाह्यकरण (बाहर के काम) खुद कर सकता है। अभी तो अंत:करण ने काम करना शुरू नहीं किया है तो फिर क्या हो सकता है? अतः बच्चे को मार्गदर्शन देना पड़ता है। फिर जैसे-जैसे वह बड़ा होता है वैसे-वैसे बाकी सब बातों में, संसार की बातों में अंत:करण शुरू हो जाता है। लेकिन फिर यदि अध्यात्म की शुरुआत नहीं होती तो फिर वहीं का वहीं रहता है।

अनुभव होता है वैसे आवरण खुलते जाते हैं

इस दुनिया में जैसे-जैसे जिनका डेवेलपमेन्ट होता जाता है, अनुभव होते जाते हैं वैसे-वैसे उनके आवरण खुलते जाते हैं। यानी किस तरह से खुलते जाते हैं? एक इन्द्रिय जीवों में एक छेद हो जाता है तब उसे उतना उजाला मिलता रहता है। सभी पेड़-पौधे एक इन्द्रिय जीव हैं, उन्हें उतना ही प्रकाश मिलता है और उतना ही आनंद मिलता है, ज़्यादा नहीं मिलता। फिर दो इन्द्रिय जीव हैं, उनमें दो छेद होते हैं। इस तरह से फिर हम तो पाँच इन्द्रिय हैं और मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार टॉप पर आकर बैठे हैं। पाँच से ज़्यादा छेद नहीं हो सकते। अब आवरण हटाने की ज़रूरत है। हम तो बुद्धि तक पहुँचे हैं। इसलिए हम उसके आवरण हटा सकते हैं लेकिन आवरण मुक्त पुरुष होने चाहिए। जो खुद आवरण मुक्त हों वे ही आपके आवरण हटा सकते हैं, वर्ना कैसे हटा सकेंगे? क्योंकि अन्य कोई जानता ही नहीं है, वह आपके लिए क्या करेगा?

❖❖❖❖❖

[5]
ज्ञान से होता है मन वश

खुद शांत हो जाए, तो मन शांत हो जाएगा

प्रश्नकर्ता : मन की अशांति को दूर करने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : मन की शांति तो, इस सत्संग में बैठने से, सत्संग के दो शब्दों का आराधन करने से तो शांति हो जाती है, वर्ना यों ही शांति नहीं हो सकती न! मन क्यों अशांत हुआ है, वह कारण ढूँढ निकालना चाहिए आपको। उसका पता लगाना होगा या नहीं, कि शादी नहीं की, इसलिए अशांत हुआ है या पढ़े नहीं हैं इसलिए अशांत हुआ है, उसका कोई कारण तो ढूँढ निकालना होगा न?

प्रश्नकर्ता : मन जो उछल-कूद करता रहता है, मन स्थिर नहीं रहता और जो शांति चाहिए, वह शांति नहीं मिलती है।

दादाश्री : मन उछल-कूद करता हो तब तक शांति कैसे हो सकती है?

प्रश्नकर्ता : उसे वश में करने के लिए क्या करना चाहिए?

दादाश्री : उसके लिए आप जो कुछ भी करने जाओगे न, उससे उछल-कूद बढ़ेगी। कुछ भी करने जाओ तो कूदेगा। वह कहता है कि, आप शांत हो जाओगे तो मैं भी शांत हो जाऊँगा। यानी मैं

आपको रास्ता बता दूँगा न, तभी आप शांत रह सकोगे। उससे मन अपने आप ही शांत हो जाएगा। फिर माइन्ड (मन) कूदेगा ही नहीं।

मन तो आपका फोटो है। दर्पण में आप फोटो देखते हैं, आपका जो फोटो दिखाई देता है वही आप हो। आप शांत हो जाओगे तो मन शांत हो जाएगा। अभी (ज्ञान के बाद) है कोई झंझट मन की? देखो, (ज्ञान के बाद) फिर शिकायत नहीं रहती। नहीं तो अनंत जन्मों से मन वश नहीं होता है। इस दुनिया में सभी चीज़ें वश हो सकती हैं, पूरी दुनिया का साम्राज्य प्राप्त कर सकता है लेकिन मन वश में नहीं हो सकता।

प्रश्नकर्ता : एक मिनट स्थिर करने जाते हैं, उतने में तो मन न जाने कहाँ कूद जाता है, न जाने कहाँ चला जाता है। फिर से उसे खींचकर लाते हैं तब फिर थोड़ा सा स्थिर होता है।

दादाश्री : हाँ, वह कहाँ से कहाँ चला जाता है! धक्का मारकर परेशान कर देता है। घड़ी भर भी चैन से बैठने नहीं देता। उस मन को हमने देखा है न! हमने वह भी देखा था और उसके बाद इस स्थान पर आ गए हैं, लेकिन वह वश हो गया। इसलिए फिर चला गया और पूरे ब्रह्मांड का साम्राज्य मिल गया। हमें छब्बीस सालों से टेन्शन खड़ा नहीं होता है क्योंकि मन वश हो गया है। अतः हमारे प्रताप से, हमारी कृपा से इन सब का, हमारी यानी अंदर वाले भगवान की कृपा से, हं! मेरी नहीं। अंदर वाले दादा भगवान की कृपा से, इन सब का कल्याण हो गया है! ऐसे 60 हज़ार लोगों का कल्याण हुआ है।

ज्ञानियों ने ही मन को जीता

प्रश्नकर्ता : कोई ऐसे महापुरुष तो होंगे न, कि जिनका मन पर कंट्रोल हो गया है?

दादाश्री : नहीं, कोई नहीं है। कोई जन्मा ही नहीं है न! वह सिर्फ ज्ञान से कंट्रोल होता है। सिर्फ ज्ञानी ही उसे जीत कर बैठे हैं। मन ज्ञान से बंध सके, ऐसा है। जब तक अज्ञान है तब तक नहीं बंध

सकता और लोग हैं अज्ञान में, यानी बंधा हुआ नहीं हो और जीतने का प्रयत्न करें, तो कुछ लोगों का घंटे-घंटे तक स्थिर रहेगा, लेकिन कब स्प्रिंग उछलेगी वह कह नहीं सकते। इसलिए सही-सलामत नहीं है। कोई व्यक्ति कहेगा कि, 'यह सही-सलामत है' तो नहीं मान सकते क्योंकि अज्ञान है और आत्मा की शक्तियाँ उल्टे रास्ते पर जा रही हैं इसलिए।

सेल्फ का रियलाइज़ होता है, तब मन वश होता है

अरे, मन को वश करने सिर्फ लंगोटी बाँधकर, सबकुछ छोड़कर, घर-संसार, बीवी-बच्चे, सब को छोड़कर चले गए। यहाँ लोग दर्शन छोड़कर जंगल में जंगली जानवरों के और पेड़-पौधों के दर्शन करने गए। पर अरे! उस मन को तो साथ ले गए, जो सब करने वाला है। गाय-बकरी पालेगा, गुलाब का पौधा लगाएगा, झोंपड़ी बाँधेगा। अरे, मन का तो स्वभाव ही ऐसा है कि जहाँ जाए वहाँ संसार खड़ा कर दे! हिमालय में जाए, तो वहाँ भी संसार खड़ा करे। अब ऐसे मन को आप कैसे वश में करेंगे? मन को वश करना वह तो बड़ा विरोधाभास है। मन के स्वभाव को वश में कर सकें ऐसा नहीं है। मगर योगी आदि होते हैं, जो पूर्व जन्म की ऐसी ग्रंथि लेकर आए होते हैं, इसलिए उन्हें अभी ऐसा लगता है कि मन वश में आ गया है। पर उनका भी मन जब आड़ापन दिखाता है तब खुद को मालूम हो जाता है कि मन वश में नहीं है। योग वालों के साथ जब कोई छेड़खानी करे, तब उनको पता चलता है कि मन कितना वश में है। योग करने की उनकी गाँठ है। वह तो प्राकृत स्वभाव से योग होता है। तब वे ऐसा समझते हैं कि मैंने योग किया, मैंने मन को वश में किया!

मन, वह फिज़िकल है। लोग तो मन को वश में करने निकलते हैं लेकिन वह फिज़िकल चीज़ वश में नहीं आ सकती न! वह फिज़िकल चीज़ कैसे वश में आ सकती है? ज्ञान के बिना वश में नहीं आ सकती। खुद को खुद का सेल्फ रियलाइज़ेशन का ज्ञान हो जाए तभी वश में आता है, वर्ना तब तक मन वश में नहीं आ सकता।

'चंदूभाई' तो इस शरीर को पहचानने का साधन दिया है लोगों ने, नाम दिया हुआ है, तो आप कौन हो? 'मेरा नाम चंदूभाई है', वह 'मेरा' कहने वाला कौन है? 'यह शरीर मेरा, हाथ मेरे, कान मेरे, आँखें मेरी, बुद्धि मेरी, मन मेरा, चित्त मेरा, अहंकार मेरा, यह सब 'मेरा-मेरा' जो बोलता है वह कौन है?

प्रश्नकर्ता : वही में पूछ रहा हूँ, कि वह कौन है?

दादाश्री : हाँ, आप वह जान लोगे तो मन वश में हो जाएगा, वर्ना वश में नहीं हो पाएगा।

प्रश्नकर्ता : यह समझाइए।

दादाश्री : 'हमारा स्वरूप क्या है? हम वास्तव में कौन हैं?' वह जान लें, सेल्फ का रियलाइज़ेशन हो जाए, तब हमारा मन वश में हो जाता है।

मन की ज़रूरत है?

प्रश्नकर्ता : शिव संकल्प उपनिषद में कहा है कि मन नहीं है तो कुछ भी नहीं है। मन है तो वृत्ति, चित्त, बुद्धि व अहंकार हैं। इसलिए मन को पहचान कर शांत कर दो। मन शिव स्वरूप हो जाए तो फिर किसी का अस्तित्व नहीं रहता।

दादाश्री : लेकिन मन शांत हो जाता है न, तब तो तरबूजे जैसे हो जाते हैं। बहुत तरबूजे देखे हैं मैंने। अरे! हमें ऐसा लगता है कि महाराज को तो कहना पड़ेगा! चेहरा देखते ही स्थिर हो जाते हैं। उनमें कोई हलचल नहीं होती इसलिए अपनी भी हलचल बंद हो जाती है, लेकिन इतने बड़े-बड़े कद्दू ही देख लो न! तरबूजे ही! भगवान ने कहा कि यहाँ कहाँ घुस गया, मन की निर्विचार दशा में कहाँ घुस गया? विचार ही बंद कर दिए, उससे मन खत्म हो गया, रास्ते में ही। अभी है तो समुद्र में, बीच समुद्र में। लेकिन जिनका मन खत्म हो चुका है ऐसे लोग मैंने देखे हैं। उनके चेहरे बहुत अच्छे

लगते हैं। उस समय आपको वहाँ से हटने का मन ही नहीं होता, वातावरण इतना सुंदर होता है। लेकिन उनके बाप की सौगंध, यदि एक शब्द भी बोलना आता हो तो! मोक्ष के लिए वह काम नहीं आता। इसलिए मैं इन्हें तरबूजे कहता हूँ कि ये तरबूजे की तरह बैठे हुए हैं। तरबूज हिलता भी नहीं है और चलता भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : लेकिन शिव संकल्प स्वरूप की ही बात कीजिए न, उससे मन शांत होता है?

दादाश्री : मन शांत होने से ये लोग तरबूजे जैसे हो गए हैं। मन को शांत मत करना। कुछ न हो तो मन को तो उकसाना। तब वह अंदर से नई-नई चीज़ें निकालेगा और फिर उसे थका देना। थकने के बाद बहुत परेशान कर रहा हो तो दो गोलियाँ (मनचाही चीज़) खिलाकर सुला देना। अगर उसे पसंद हो न, तो उसे ज़रा दूध-वूध पिलाकर खुश कर देना।

प्रश्नकर्ता : शिव संकल्प उपनिषद का यह पहला वाक्य, फिर से पूछ रहा हूँ, 'मन नहीं तो कुछ भी नहीं, मन है तो सबकुछ है।' ये दो चीज़ें, 'मन है' और 'मन नहीं है', इनका क्या अर्थ है?

दादाश्री : 'नहीं है' ऐसा तो ये लोग समझ गए हैं लेकिन मन की ज़रूरत कब नहीं थी वह समझना चाहिए। ये तो बीच में ही 'ज़रूरत नहीं है' ऐसा समझ गए और इसीलिए ये कद्दू जैसे हो गए। मन नहीं है, ऐसा तो आपको किनारे पर उतरने के बाद में कहना है कि, अब मन की ज़रूरत नहीं है। अरे, अभी तो समुद्र में बैठा है और 'मन की ज़रूरत नहीं है', वह मन को खत्म करने गया। उसने नाव को तोड़कर सबकुछ खत्म कर दिया, मन रूपी नाव को!

मोक्ष में जाने की नाव

प्रश्नकर्ता : सभी 'मन को मारो', ऐसा ही कहते हैं।

दादाश्री : हाँ। मन को क्यों मारना है? लोग यह ढूँढ निकालते

हैं। मन को मार देगा तो फिर रहा क्या तेरे पास? मन के बिना तो मनुष्य जी ही नहीं सकता। मोक्ष में जाने तक मन की आवश्यकता है। लोग मन को मार देते हैं, तोड़ देते हैं न? बहुत गलत है। मन ही मोक्ष का कारण है। वह मन से ही बंधा हुआ है और मन से ही छूटता है।

प्रश्नकर्ता : गीता में कृष्ण भगवान ने कहा है न कि, मन ही मनुष्य के बंधन और मोक्ष का कारण है, ऐसा है?

दादाश्री : सही है। मोक्ष में जाना हो तब भी मन ले जाता है क्योंकि उसी से बंधे हुए हैं। इसलिए हमें मन को तोड़ना नहीं चाहिए। मन रूपी नाव इस तरफ मुड़ेगी तो मोक्ष में जाएगा और दूसरी तरफ मुड़ेगी तो संसार में भटकेगा। इसलिए ज्ञान मार्ग पर आगे बढ़ाने के लिए इस तरफ मोड़ने वाला चाहिए।

प्रश्नकर्ता : मन बंदर है ऐसा भी कहते हैं न?

दादाश्री : इसका तो हमने कुछ भी नाम रख दिया है। कोई बंदर कहता है, किसी ने नाव कहा है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन क्या मन सचमुच में बंदर है?

दादाश्री : बंदर नहीं, लेकिन नाव है। बाकी, बंदर जैसा अनुभव हो रहा हो तो बार-बार दांत निकालता रहता है। तब बंदर ही कहना पड़ता है न? जबकि नाव यानी क्या है? संसार में उल्टे रास्ते पर ले जाने वाला यह मन है और सद्मार्ग पर ले जाने वाला भी यही है। इसलिए जब तक किनारे नहीं पहुँच जाते तब तक इस मन को तोड़ना मत।

संसार समुद्र में हैं अभी तो, किनारा दिखाई नहीं देता और अपनी नाव तोड़ दें, ऐसा मानकर कि, कभी न कभी इस नाव को तोड़ ही देना है, किसी पुस्तक में पढ़ा हो उस आधार पर अभी तोड़ देंगे तो क्या स्थिति होगी?

प्रश्नकर्ता : मझधार में डूब जाएँगे।

दादाश्री : तो ऐसा इन लोगों के साथ होता है। हाँ, लोग कहते हैं, मन में विचार आते हैं तो बहुत दु:ख देते हैं। इसलिए लोग मुझसे कहते हैं, कि 'ऑपरेशन कर दीजिए, मन को तोड़ दीजिए।' 'अरे, नहीं तोड़ सकते, रहने दे। मन तो पूरा रहना चाहिए।'

मन की तो बहुत ज़रूरत है। मन है तो यह संसार है और वहीं से मोक्ष में जा सकते हैं। जब तक ज़रूरत है तब तक मन आपको संसार में रखता है और आपको ज़रूरत न हो तो मोक्ष में भी यही ले जाता है। यानी संसारसागर में नाव रूपी है यह। तो जब भी आपको मोक्ष में जाना होगा तब किनारे पर पहुँचा देगा। किनारे पर पहुँचने के बाद उसे छोड़ देना, अलविदा कर देना। उतरने के बाद कहना कि 'जय सच्चिदानंद।' तू और मैं अलग। मन का विरोध नहीं करना है। मन तो सब से अच्छी चीज़ है। मन उसके धर्म में ही है, गुणधर्म में ही है।

मन का स्वभाव विरोधाभासी

प्रश्नकर्ता : मन में तो कई तरह के विचार आते हैं। मन बिल्कुल शून्य तो नहीं रहता। विचार तो आते ही रहते हैं।

दादाश्री : विचारों का तो ऐसा है न कि, यह जो मन है वह आपको इन्फॉर्म (सूचित) करता है। यह अच्छा है, यह भय वाला है, यह ऐसा है, वैसा है, इस तरह वह अपना धर्म निभाता है। वर्ना वह भय की जगह पर इन्फॉर्म नहीं करेगा तो उसके लिए गुनहगार माना जाएगा। उसमें से जितना आपको ग्रहण करने जैसा लगे उतना ग्रहण कर लेना और बाकी का छोड़ देना। मन तो अपना धर्म निभाता है।

हम टैक्सी में सांताक्रुज से यहाँ पर आ रहे हों, और किसी जगह पर गाड़ियाँ टकरा गई हों न, तो हमारा मन भी कहता है कि 'आगे एक्सिडेन्ट हो सकता है।' तब मैं कहता हूँ, 'भाई, हमने नोट कर लिया। तेरी बात सही है। हमें जाग्रत रहना चाहिए।' फिर दूसरा

विचार आए कि 'ऐसा कुछ भी नहीं है कि जो आपका एक्सिडेन्ट करवा दे।' तब आपको ऐसा कहना चाहिए कि 'हमने यह नोट कर लिया।' उसके बाद आगे कोई दूसरी बात करेगा। उसे ऐसा कुछ नहीं है कि आपको मारना ही है। मन का स्वभाव ऐसा नहीं है कि एक ही बात पर अड़ा रहे। आपने मन के बारे में ऐसा पता लगाया है कि वह एक ही बात पर अड़ा रहता है?

प्रश्नकर्ता : घूमता ही रहता है।

दादाश्री : अगर हम एक ही बात पर अड़े रहें न, तो वह अड़ा रहेगा। वर्ना हम कहें कि तेरी बात हमने नोट कर ली। तो वह आगे की दूसरी बात करेगा। और हम कहें कि 'नहीं, तेरा कहना सही है। अब क्या होगा?' तो फिर घंटों तक वही चलता रहेगा।

हमें पता चलता है कि किन-किन चीज़ों के विचार आते हैं। अंदर मन बिगड़ता है कि 'आज आपकी सास मर जाए तो क्या होगा?' तब कहें, 'समझ गए हम।' फिर कहता है, 'आपकी मौत हो जाए तो क्या होगा?' तब कहें, 'वह भी समझ गए। और अब तीसरी बात कर आगे।' बाद में यह भी बताता है कि 'कल मर जाएँगे तो इन सब का क्या होगा?' तब हम कहते हैं, 'हमने यह नोट कर लिया।'

अरे, इतनी बड़ी उम्र में भी शादी करने की बात करता है, ऐसा है इस मन का, कब क्या कहे वह कह नहीं सकते। लेकिन यह सब सुनकर हमें गुस्सा होने की क्या ज़रूरत है? अरे, वह तो वैधव्य की बात भी करता है, 'वैधव्य आ जाएगा तो क्या करेंगे?' तब कहते हैं, 'भाई, विधुर हो गए, चल न। अब आगे कोई और बात कर न!' मन को किच-किच करने की आदत पड़ी हुई है। हमें उस पर ध्यान ही नहीं देना है। कोई पागल आदमी हमारे पीछे से जा रहा हो, वह अपना क्या बिगाड़ सकता है? वैसा ही समझ लेना है।

अतः मन के इस साइन्स (विज्ञान) को तो समझना चाहिए।

वह भी इन सब इन्द्रियों की तरह काम करता है। वह खुद का धर्म निभा रहा है। आपको पसंद नहीं हो फिर भी कान तो सुने बगैर रहते ही नहीं न? वह सुनना है लेकिन, फिर आपको वह फोन नहीं लेना हो तो मत लेना, वह आपका काम है।

मैं खुद मन से इसी तरह कहता हूँ, वही आपको बता रहा हूँ कि भाई, इस तरह से नोटेड (नोट किया) कहना। तो फिर कुछ भी नहीं। फिर वह कोई और अच्छी बात करेगा क्योंकि इस शरीर में एक ही चीज़ ऐसी है जो पूरी तरह से विरोधाभासी है। हर तरह से यदि कोई विरोधाभासी है तो वह यह मन है और इसीलिए मज़ा आता है। क्योंकि यदि एक तरफा ही हो न, तो मज़ा नहीं आएगा न! क्षण भर में फिर से कुछ अलग ही तरह का बताता है। अरे, एक पैंसठ साल के आदमी को उसका मन क्या बताता रहता था? 'शादी कर लेते तो?' तो फिर उसने मुझे बताया। मैंने कहा, 'अरे, किस तरह का है तेरा यह मन! विरोधाभासी!'

विचारों को हमें देखते रहना है

प्रश्नकर्ता : तो विचारों का शमन नहीं करना चाहिए?

दादाश्री : विचारों को हमें देखते रहना चाहिए कि क्या विचार आ रहे हैं। सिनेमा में गए हों तो फिल्म देखनी चाहिए या उसके साथ किच-किच करनी चाहिए?

प्रश्नकर्ता : लेकिन मन में उल्टे-सीधे विचार आते हैं।

दादाश्री : वह तो मन का स्वभाव विचार करने का है। हम मना करेंगे तब भी विचार करेगा। हम कहें कि, 'ऐसे विचार क्यों कर रहा है?' तब कहेगा, 'नहीं, मुझे ऐसे ही विचार करने हैं।' जैसे कि खराब सास मिली हो, उस सास के साथ टकराना नहीं हो और दूर रहना हो तो रह पाते हैं। उसी तरह मन से अलग रहना चाहिए। उससे कहना कि, 'तू आप ही आप शोर मचाता रह।'

मन का 'ऑपरेशन'

मन दो प्रकार के विचार करता है। खराब विचार करता है और अच्छे विचार भी करता है। अर्थात् दोनों प्रकार के विचार करना, वह मन का धर्म है और विचार ही यदि नहीं आते हों तो उसे 'एबसेन्ट माइन्डेड' (शून्यमनस्क, बिना मन का) कहते हैं। अब पागल का भी 'माइन्ड' होता है, पर 'एबसेन्ट माइन्डेड' अर्थात् जीव योनि में से बेकार हो गया कहा जाएगा।

वे तो एक बड़े लेखक थे। वहाँ पचासेक लोग बैठे हुए थे। मुझसे कहने लगे, 'मेरे मन का ऑपरेशन कर दीजिए।' डॉक्टरों को वह नहीं आता। हमें तो मन का ऑपरेशन करना आता है न! वे मुझसे कहने लगे, 'ऑपरेशन कर दीजिए।' मैंने कहा, 'यदि आपको ऑपरेशन करवाना है तो मैं आपका कर दूँगा लेकिन फिर फायदा क्या?' तब कहने लगे, 'फिर खूब आनंद में रहूँगा। यह मन ही परेशान करता है। और कुछ परेशान नहीं करता।' तब मैंने कहा, 'तो ऑपरेशन कर दूँ?' तो कहने लगे, 'फिर तो मुझे निरंतर आनंद ही रहेगा।' मैंने कहा, 'आप भविष्य कैसे बता सकते हो? बाद में ऐसा होगा, ऐसा भविष्य कैसे बता सकते हो? क्या आपको कोई भविष्य ज्ञान हुआ है?' तब कहने लगे, 'नहीं, मुझे हिसाब लगाने पर ऐसा लगता है कि यह नहीं होगा तो फिर मुझे आनंद रहेगा।' तब फिर मैंने कहा, 'भाई, यह ऑपरेशन करना है, उसके लिए आपको गवाह लाने पड़ेंगे। करने के बाद कहीं आप पलट न जाओ।' तब कहने लगे, 'मैं नहीं पलटूँगा।' तब मैंने कहा, 'नहीं, यह नहीं मान सकते। आपको पहले जिम्मेदारी का दस्तावेज दे देना पड़ेगा। उस दस्तावेज पर गवाहों के हस्ताक्षर करवाने होंगे। वह ऑपरेशन करने के बाद मेरी ज़िम्मेदारी नहीं रहेगी। आपके जोखिम पर कर रहा हूँ। इसमें फिर इनका क्लेम नहीं रहेगा। हमने राज़ी खुशी से करवाया है।' तब कहने लगे, 'इतना बड़ा क्या जोखिम है इसमें?' मैंने कहा, 'जोखिम बता दूँ? मन का ऑपरेशन करवा लोगे न, तो एब्सेन्ट माइन्डेड (शून्यमनस्क) हो जाओगे।' तो

वे कहने लगे, 'नहीं-नहीं, तो मुझे नहीं करवाना है।' तब मैंने कहा, 'इसलिए दस्तावेज पर लिखवा रहा हूँ न!' फिर मैंने कहा, 'ज़रा सोचो तो सही। लेखक होकर क्या बोल रहे हो?' मन को ऐसा कर देंगे तो वह एब्सेन्ट माइन्डेड, तब फिर *तुंबड़ा* (तूंबा, लौकी का पात्र) जैसा दिखाई देगा। एब्सेन्ट माइन्डेड हो जाएगा, तुम्हें ऐसा अच्छा लगेगा?

प्रश्नकर्ता : एब्सेन्ट माइन्डेड तो अच्छा नहीं लगेगा।

दादाश्री : एब्सेन्ट माइन्डेड का अर्थ क्या है? तुम्हें यह समझ में आता है? ये पागल लोग होते हैं न, पागल भी दिमाग़ वाले होते हैं। उनमें एब्सेन्ट माइन्ड नहीं होता। एब्सेन्ट माइन्डेड यानी कि मनुष्य यूज़लेस (बेकार) हो जाता है। इस दुनिया में किसी काम का नहीं।

प्रश्नकर्ता : ऐसा तो होना ही नहीं चाहिए न! मन से तो काम है।

दादाश्री : इसलिए हम ऑपरेशन नहीं करते हैं। मन को जीवित रखना है। मन तो बहुत ही अच्छी चीज़ है। मोक्ष में ले जाए ऐसी चीज़ है।

मन तो अंत में मोक्ष तक ले जाने वाली नाव है। और तारने वाला, डुबोने वाला भी वही है। तेरी गलती हो गई तो डुबो देगा और तेरी गलती नहीं होगी तो वह तुझे मोक्ष में पहुँचा देगा। तू मन में विचरना मत, यानी कि विकल्प मत करना तो मोक्ष में चला जाएगा। निर्विकल्पी और विकल्पी होना वह तेरे हाथ की बात है, मन को इससे कोई लेना-देना नहीं है।

मन में तन्मयाकार होना, वह संसार

प्रश्नकर्ता : मन के बिना जीना भी एक कल्पना ही है न?

दादाश्री : लेकिन कोई मनुष्य मन रहित तो हो ही नहीं सकता न!

प्रश्नकर्ता : तो 'मन से मुक्त होना' का क्या अर्थ है?

दादाश्री : मन जो कहता है, वह हमें एक्सेप्ट (स्वीकार) नहीं करना चाहिए। इतनी शक्ति हममें आनी चाहिए। यों ही तो शक्ति नहीं आ जाती। जब हम उसकी बैटरी चार्ज कर देते हैं, तब शक्ति आती है। फिर मन का कहा नहीं सुनता वह आत्मा। फिर दिक्कत नहीं आती। मन में तन्मयाकार होना, वही संसार है और मन को देखा और जाना, उसे मुक्ति कहते हैं। इतनी सी ही बात है।

प्रश्नकर्ता : कई बार मन में खराब विचार आते हैं पर हृदय मना करता है, इसके बावजूद भी मन सर्वोपरी बन कर खराब काम करता है तो इसका ज़िम्मेदार कौन है?

दादाश्री : ऐसा है न, मन न्यूट्रल (तटस्थ) है। वह कोई काम कर ही नहीं सकता। मन में आप 'खुद' एकाकार हो जाते हो तो काम होता है। न्यूट्रल चीज़ कभी भी कोई काम नहीं कर सकती।

प्रश्नकर्ता : आप यानी कौन? आत्मा या हृदय?

दादाश्री : 'आप' अपने आप को जो मानते हो, वह। आप चंदूभाई कहो या कुछ भी कहो। आप जब मन में एकाकार होते हो तो मन जीवित हो जाता है और तभी काम होता है। अगर आप एकाकार नहीं होंगे तो मन न्यूट्रल है। कुछ भी नहीं कर सकता।

अच्छे-बुरे विचार वे इफेक्ट, रोक नहीं सकते

मन खुद के स्वरूप से बिल्कुल भिन्न ही है और कभी भी एक नहीं हो सकता । जब मनचाहे विचार आते हैं, तब भ्रांति से ऐसा लगता है कि मैं विचार करता हूँ, मेरे विचार कितने अच्छे हैं और जब अनचाहे विचार आते हैं, तब कहता है, कि मुझे बहुत बुरे विचार आते हैं। मना करता हूँ, फिर भी आते हैं। वह क्या सूचित करता है? अरे, अच्छे विचार करने वाला 'तू' और बुरे विचार आने पर कहता है, कि 'मैं क्या करूँ?' यदि स्वयं ही विचार करता हो, विचार करने की खुद की सत्ता होती, तो हर कोई मनचाहे विचार ही करता।

अनचाहे विचार कोई करता ही नहीं। पर ऐसा होता है? नहीं। वह तो, मनचाहे और अनचाहे, दोनों ही विचार आएँगे ही!

संसार में मन का विज्ञान खास समझने जैसा है। हर कोई मनोलय (मन को विलय) करने जाता है। अरे, मन का नाश नहीं करना है। मन का नाश हो, तो मेन्टल हो जाएगा। मन में अच्छा ही आए, ऐसा नहीं होना चाहिए। जो आए सो भले ही आए। मन से हमें क्या कहना है? तू बाजा बजाना चाहे, तो वह बजा और शहनाई बजाना चाहे, तो वह बजा। कार्य मन को रोकने वाले या बदलने वाले हम कौन होते हैं? कोई बाप भी उसे बदल नहीं सकता क्योंकि वह तो इफेक्ट (परिणाम) है। उससे डरना क्या? वह बाजा नहीं बजाएगा, तो हम सुनेंगे क्या? हमें एडजस्टमेन्ट लेना है। जैसा गाना चाहो वैसा गाओ, हमें तो सब प्रकार का शौक है।

मन को घोड़ा बनाकर, खुद हो जाओ सवार

हमें ज्ञान नहीं था, तब भी हमें विचार आते, तो हम समझ जाते थे कि आज ये सोने नहीं देंगे। तब मैं मन से कहता, 'दौड़, दौड़, बहुत अच्छा, बहुत अच्छा, दौड़ता रह। तू घोड़ा और मैं सवार। तुझे जिस रास्ते पर चलना है उस रास्ते पर चल। तू है और हम हैं'। तो सुबह के सात बज जाते थे। इस संसार का नियम क्या है? जिसे रोको, जिस पर कंट्रोल करो, वह ऊपर चढ़ बैठता है। जैसे शक्कर का कंट्रोल आए, तो शक्कर की कीमत बढ़ जाती है। मन का भी वैसा है। मन को यदि रोकने जाओगे, तो वह दुगुनी गति से दौड़ेगा। इसलिए मन को रोकना मत। आज्ञाधीन मन हो और रोकोगे तो चलेगा। आज्ञाधीन न हो, तो उसे दौड़ाते रहना। वह थक जाए, हाँफने लगे, हमें क्या? लगाम हमारे हाथ में है न? तब लोग क्या कहते हैं? छोड़ो न इस मन को, वर्ना नींद नहीं आएगी। फिर सोने के लिए मन को दबाते रहेंगे। रोकते रहेंगे। अरे, नींद को छोड़ न, एक तरफ! यह तो सच में रास आया है, मन पर सवारी करने का मौका मिला है, ऐसा मौका फिर कब मिलेगा?

हमने तो मन पर सवारी की, तभी तो यह अविरोधाभास ज्ञान उत्पन्न हुआ है!

मन गाँठों का बना हुआ है

अब, मन कैसे उत्पन्न हुआ है, वह यदि कोई खोज ले तो मैं उसे वैज्ञानिक कहूँगा। हर कोई कहता है कि मन मेरा है, मन मेरा है लेकिन मन क्या है? कैसे उत्पन्न हुआ है और किससे बना है? यानी क्रिएशन (उत्पन्न) कैसे हुआ है? उसे यह पता नहीं चलता। मन का क्रिएशन निरंतर बदलता रहता है। इसलिए यह कैसे बना, वह कोई नहीं बता सकता।

प्रश्नकर्ता : मन क्या है?

दादाश्री : हाँ, ऐसा तो पहली बार आपने ही पूछा है। मन अपना स्टॉक (जत्था) है। ये सब दुकानदार बारह महीनों के स्टॉक का हिसाब लगाते हैं न, उसी तरह यह मन पूरी लाइफ का स्टॉक है। दुकानदार बारह महीने का कैसे हिसाब लगाते हैं? उसी तरह यह पिछली लाइफ का स्टॉक है, वह इस जन्म में आपके उदय में आता है और फिर आपको इन्स्ट्रक्शन (सूचना) देता है। अभी यह जो पुराना मन है न, वह डिस्चार्ज होता रहता है और नया मन बनता रहता है। मन तो डिस्चार्ज होता रहता है इसलिए शोर मचाता ही रहेगा वह तो। डिस्चार्ज अर्थात् दूसरे शब्दों में एक्ज़ोस्ट (खाली) होना। एक्ज़ोस्ट शब्द समझ गए न, वह मन एक्ज़ोस्ट होता रहता है।

अब, यह मन क्या है? उसका स्वरूप क्या है? वह समझाता हूँ।

मन, वह तो ग्रंथि है। गाँठों का बना हुआ है। मन की गाँठें कैसी होती हैं, इसे आपको मैं समझाता हूँ। एक खेत में गरमी के मौसम में गए हों, तो आपको खेत साफ-सुथरा दिखाई देगा। तो आप मान लेंगे कि मेरा खेत एकदम साफ है। तब मैं कहूँगा, 'नहीं, भाई,

अभी बरसात होने दे, फिर देखना'। बरसात होते ही बाड़ों के पास और हर जगह तरह-तरह की बेलें निकल आती हैं। कंकोड़े की, करेले की, कुँदरू की और जंगली बेलें ऐसी तरह-तरह की बेलें उग जाती हैं, ये बेलें कहाँ से उग आईं? वहाँ हर एक बेल की गाँठ थी, जो बरसात का संयोग आ मिलते ही निकल आईं। फिर आप खेत को साफ करने जड़ सहित बेलें उखाड़ फेंकते हैं और खुश होते हैं, कि अब मेरा खेत साफ हो गया। तब मैं कहूँगा, 'नहीं, अभी तीन साल तक, बरसात होने के बाद देखते रहो और उसके बाद यदि बेल नहीं उगे, तभी आपका खेत साफ हुआ कहलाएगा'। उसके बाद ही निर्ग्रंथ होता है। वैसे ही यह मन भी गाँठों का बना है। जिसकी गाँठ बड़ी, उसके विचार ज़्यादा आते हैं और जिसकी गाँठ छोटी, उसके विचार बहुत कम आते हैं। जैसे कि एक बनिए के बेटे से पूछें, कि तुझे माँसाहार के विचार कितनी बार आएँ? तो वह कहेगा, 'मेरी बाइस साल की उम्र में चार-पाँच बार आए होंगे'। इसका अर्थ यही कि, उसकी माँसाहार की गाँठ छोटी है, सुपारी जितनी। जबकि एक मुसलमान के बेटे से पूछें, तो वह कहेगा, 'मुझे तो रोज़ कितनी ही बार माँसाहार के विचार आते हैं'। इसका अर्थ यह कि, उसकी माँसाहार की गाँठ बहुत बड़ी है। सूरन की गाँठ जैसी। जब तीसरे किसी जैन के बेटे से पूछें तो कहेगा, मुझे ज़िंदगी में माँसाहार करने का विचार ही नहीं आया। इसका अर्थ यही कि उसमें माँसाहार करने की गाँठ ही नहीं है।

अब आपसे कहा जाए कि एक महीने का ग्राफ बनाकर लाइए। ग्राफ में नोट करें कि सब से अधिक किस विषय के विचार आएँ? उससे कम फिर दूसरे नंबर पर किसके विचार आएँ? ऐसे नोट करते जाओ। फिर एक सप्ताह का ग्राफ बनाकर लाओ, और फिर एक दिन का ग्राफ बनाकर लाओ। इस पर से आपको पता चल जाएगा, कि किस-किसकी गाँठें अंदर पड़ी हैं और कितनी-कितनी बड़ी हैं। बड़ी-बड़ी गाँठें तो पाँच दस ही होती हैं, जो बाधक हैं। छोटी-छोटी गाँठें बहुत बाधक नहीं हैं। इतना कर सकते हैं या नहीं?

हम में एक भी गाँठ नहीं है, हम निर्ग्रंथ कहलाते हैं। मनुष्य मात्र गाँठदार लकड़ी कहलाता है। उससे फर्निचर भी नहीं बनता। अब ये मन की गाँठें बहुत ही एक्सेस हो जाएँ, तो देह के ऊपर भी निकल आती हैं, उन्हें ट्यूमर्स कहते हैं।

इस तरह बनती है मनोग्रंथि

प्रश्नकर्ता : अब मन में गांठें आई कहाँ से?

दादाश्री : हाँ! इसका फन्डामेन्टल (आधारभूत बातें) बताता हूँ। साधारण तौर पर मैं बताता हूँ कि यह कैसे हुआ। उस पर से सबकुछ समझ लेना। इसके लिए विस्तार से बताने जाएँ न, तब तो कितने ही दिन लग जाएँगे।

अभी एक कॉलेज में चार लड़के हैं। अब, ये जो लड़के कॉलेज में पढ़ते हैं न, वे उच्च जाति के, संस्कारी लोग हैं इसलिए उन्होंने कभी माँसाहार नहीं किया और करने का विचार भी नहीं किया होगा। लेकिन जब तक इन्डिया में रहते हैं तब तक। लेकिन फिर कॉलेज में (विदेश में) दूसरे लड़कों के साथ होटल में जाते हैं, दूसरे लोग माँस खा रहे हों, वहाँ ये बैठते तो हैं लेकिन खाते नहीं हैं। फ्रेन्ड सर्कल में सभी लोग माँस खाते हैं न, तो एक फ्रेन्ड को यह बात अच्छी नहीं लगती लेकिन फिर भी मन में ऐसा लगता है कि, कोई ऐसा कहे कि इससे शरीर मज़बूत होता है... और उसका शरीर थोड़ा कमज़ोर हो, तो उसके मन में ऐसा भाव हो जाता है कि शरीर मज़बूत बनाने के लिए माँसाहार करने में क्या दिक्कत है? अब खा तो सकता ही नहीं। सभी माँसाहार कर रहे होते हैं, उससे कहते हैं कि, 'तू ले थोड़ा', तो वह नहीं लेता। 'नहीं, मुझे नहीं भाता', लेकिन फिर भी कई दिनों तक उनके साथ जाता रहता है न, तो फिर सभी बातें करते हैं कि, इससे शरीर मज़बूत होता है, ऐसा है, वैसा है, तो उसे श्रद्धा और प्रतीति हो जाती हैं कि यह बात सही है। मुझे नहीं भाता, वह बात अलग है लेकिन यह बात सही है। तो वह इस जन्म में नहीं

खा पाता लेकिन अगले जन्म के लिए बीज डाल देता है। खाता ही नहीं है लेकिन मन में ऐसा भाव हुआ तो उससे अंदर गांठ बननी शुरू हो गई, ग्रंथि! वह ग्रंथि बनी। तो पहले वह राई के दाने जितनी होती है और फिर जैसे-जैसे पुष्टि मिलती जाती है वैसे-वैसे गांठ बड़ी होती जाती है, वह इस जन्म में तो नहीं खा सकता लेकिन वह जो ग्रंथि बनी है फिर अगले जन्म में वह ग्रंथि फूटती है। तब फिर उसे माँस खाने का विचार आता है और फिर उसे माँसाहार मिल भी जाता है।

आप में ऐसी गांठ नहीं है जबकि मुसलमानों में तो यही गाँठें हैं, इतनी बड़ी-बड़ी। यह खाता नहीं है फिर भी इसने सोचा कि 'ऐसा चाहिए', उससे अभिप्राय बना। यह अभिप्राय बना इसलिए अगले जन्म में वह खाएगा। जो व्यक्ति आज खाता है और उसके मन में ऐसा लगे कि 'माँसाहार तो नहीं करना चाहिए, कितने जानवर काटे जाते हैं तब जाकर हम इनका माँस खाते हैं।' तो फिर वह अगले जन्म में नहीं खाएगा।

यह तो मन का एक अंश बताया है। कुसंग में से एकदम आदत पड़ गई। माँसाहार देखकर फिर ज़रा खाना सीख गया तो उससे ग्रंथि बन गई उसमें। अगले जन्म में पूरी ग्रंथि निकलती रहती है, वही विचार आते रहते हैं। अब फिर उसे सत्संग मिलता है। सत्संग में ग्रंथियाँ टूट जाती हैं। कुसंग से ग्रंथियाँ बनती हैं और सत्संग से ग्रंथियाँ टूटती हैं। लेकिन यथार्थ सत्संग होना चाहिए।

अब, अभिप्राय देता है तभी से उसे बंधन हो जाता है। अंदर मन की गांठ बन जाती है। उस गांठ की वजह से जैसे-जैसे खाता जाता है वैसे-वैसे गांठ बड़ी होती जाती है। उसी तरह यह मन कई गाँठों से बना है। इसलिए कुछ खास तरह के विचार आते हैं।

पूरी दुनिया के लोगों को जो विचार आते हैं, वे सभी तरह के विचार आपको नहीं आते। आपको आपकी गाँठों के विचार आते हैं।

इन भाई को उनकी गाँठों के विचार आते हैं। इन्हें इनकी गाँठों के विचार आते हैं। हर एक की ग्रंथियाँ अलग-अलग होती हैं। ऐसी ग्रंथि हम में खत्म हो गई है। हम में कोई ग्रंथि नहीं है इसलिए हम निर्ग्रंथ कहलाते हैं।

मन की गाँठें विलय करने का तरीका

प्रश्नकर्ता : मन की ग्रंथियों का छेदन कैसे किया जाए?

दादाश्री : माँसाहार के विचार आएँ तो समझना कि मन में वह ग्रंथि बन चुकी है। उसके विचार आएँ और एकाध बार खा लें तो समझना कि यह गांठ बन चुकी है, फिर उसे विलय करने के लिए ऐसा बोलना कि 'माँसाहार करने जैसा नहीं है'। ऐसे करते-करते गांठ खत्म हो जाएगी। पहले अभिप्राय बना था कि 'खाने जैसा है' इसलिए गांठ बन गई थी और अब, 'खाने जैसा नहीं है' अभिप्राय बना है तो गांठ खत्म हो जाएगी। अभिप्राय चेन्ज करने की ज़रूरत है।

मन के फादर 'ओपिनियन' और मदर 'लेंग्वेज'

मन का फादर कौन है? ओपिनियन इज़ द फादर ऑफ माइन्ड एन्ड लेंग्वेज इज़ द मदर ऑफ माइन्ड। (अभिप्राय वह मन का पिता है और भाषा वह मन की माता है।) तो ये हैं मन के फादर-मदर। इन फादर-मदर के बिना जन्म ही कैसे हो सकता है? जबकि ये सभी संत तो ऐसा कहते हैं, 'भगवान ने दिया।' मैंने कहा, भगवान कहाँ से लाए? उनका कोई कारख़ाना नहीं है। वे लोग समझते हैं कि ये जो आते हैं न, वे इलेक्ट्रिक के मीटर, उसी तरह उस मीटर के जैसा दिया होगा एक-एक!

आपका ही प्रोडक्शन (उत्पादन) है यह।

किसी पुस्तक में फादर-मदर का नाम नहीं लिखा है?

प्रश्नकर्ता : दुनिया की किसी भी पुस्तक में नहीं लिखा है, दादा। वह तो आपके पास ही है।

दादाश्री : फादर-मदर नहीं होते तो माइन्ड होता ही नहीं। फादर-मदर हैं ही। आप जानते हो फादर कौन है? चाय फीकी आए तो 'चाय फीकी है', ऐसा अभिप्राय देते हो या नहीं?

प्रश्नकर्ता : देते हैं।

दादाश्री : ओपिनियन इज़ द फादर ऑफ माइन्ड एन्ड लेंग्वेज इज़ द मदर ऑफ माइन्ड। (अभिप्राय मन का पिता है और भाषा मन की माता है।) जिस लेंग्वेज (भाषा) में आप ओपिनियन (अभिप्राय) देते हो वह लेंग्वेज मदर है और ओपिनियन फादर है। ओपिनियन नहीं होता तो मन नहीं होता। इस दुनिया में पहली बार ये सारे स्पष्टीकरण हुए हैं, एक्ज़ेक्टनेस में (यथार्थ रूप से)!

मन के फादर और मदर किसी को मिले ही नहीं। जब से वर्ल्ड (दुनिया) है तब से ऐसा नहीं बताया गया। यह तो पहली बार माइन्ड के फादर-मदर हैं ऐसा बताया गया है। यानी अभिप्राय दें तो मन उत्पन्न हो जाता है। अभिप्राय देने की आदत लोगों में होती है क्या?

प्रश्नकर्ता : होती है।

दादाश्री : उसी से यह मन उत्पन्न हो गया है और कुछ भी नहीं है।

फादर-मदर दूर, तो जन्मे नहीं बेटा

अभी, अपना मन बंद करना हो, दो-चार जन्मों में मन को बंद कर देना हो, तो उसका कोई तरीका है क्या?

प्रश्नकर्ता : कोई स्विच होगी न, ऑफ (बंद) करने के लिए।

दादाश्री : पूरा जगत् मन को बंद करना चाहता है। अरे, फादर-मदर को ढूँढ ले न तो यह बंद हो सकेगा। फिर, उसके मदर और फादर को मिलने ही न दें, तो फिर से उत्पन्न कैसे होगा? एक

जन्म में ही ऐसी समझ मिल जाए तो फिर से अगले जन्म में मन उत्पन्न ही नहीं होगा। मन अपने वश में रहे, वैसा साधारण मन रहा करेगा।

भाषा, वह मदर है। भाषा बोलनी है लेकिन अभिप्राय नहीं रखना है। वास्तव में यह गारन्टेड बात है। अगर ओपिनियन बंद कर दोगे तो आपका मन एक-दो जन्मों में ही थोड़ा-थोड़ा-थोड़ा करके खत्म हो जाएगा।

❖❖❖❖❖

[6]
चित्तशुद्धि से मुक्ति

सुख खोजने चित्त भटकता है हर जगह

प्रश्नकर्ता : इन सब में, अंतःकरण में मुख्य चित्त ही है न? चित्त ही सभी का लीडर है न? चित्त ही सभी को खींच लाता है न? चित्त को काबू में करने की ज़रूरत है या मन को? ये लोग चित्त को भूलकर मन के पीछे क्यों पड़े हैं?

दादाश्री : आपकी बात सच है। ज्ञानियों ने भी चित्त को ही महत्व दिया है, लेकिन लोगों को तो चित्त का और मन का भान ही नहीं है न! इन्होंने तो चित्त को और मन को एक कर दिया है।

लोग एकाग्रता किसलिए करते हैं? मन के लिए नहीं करते, चित्त की स्थिरता खोजते हैं। अब चित्त की स्थिरता क्यों खोजते हैं? तब कहते हैं, चित्त भटकता रहता है। ऑफिस जाकर आता है, इधर जाकर आता है, उधर जाकर आता है। बहन यहाँ बैठे हैं, फिर भी घर जाकर आता है। चित्त का काम है भटकना।

चित्त एकाग्र हुआ तो काम हो गया। हमारा निरंतर एकाग्र ही रहता है, अस्थिर होता ही नहीं। क्योंकि चित्त किसलिए भटकता है? तब कहते हैं, सुख खोजता है। क्या खोजता है?

प्रश्नकर्ता : सुख।

दादाश्री : कि मेरे घर पर सुख था और ये सब ऐसा क्यों? वह सुख इसमें होगा, इसमें होगा, इस सोफासेट में है, इसमें है, उसमें है, इस तरह से भटकता रहता है और फिर सोफासेट लाकर अनुभव करता है। फिर कहता है, अरे.. ले आने के बाद उसमें उसे सुख नहीं लगता। फिर वापस कुछ और ढूँढ निकालता है। बंगला बनने तक चित्त उसी में रहता है। बंगला बन जाने के बाद में कुछ भी नहीं चाहिए, ऐसा कहता है। बंगला बन रहा हो तब फिर गाड़ी की चिंता होती है। वापस चित्त उसमें भटकता रहता है। यानी उसके लिए तो हम एक बाउन्ड्री बना दें, लिमिट रखें, कि भाई, एक मकान बना देना है सिर्फ रहने लायक, फिर गाड़ी वगैरह अन्य कुछ भी नहीं चाहिए। ऐसा पक्का कर लें, तो उसका हल आएगा। वर्ना इसका कोई हल आ सके ऐसा नहीं है। इसका तो अंत ही नहीं आए, ऐसा अपार है।

चित्त भटकता है तो खुद खो जाता है

यहाँ पर बैठे-बैठे खो जाए तो समझना कि चित्त भटकने गया है। इस तरह चित्त भटकते रहे तो फिर उसे मनुष्य ही कैसे कहा जाएगा? यह तो यहाँ पर बैठा होता है और चित्त घर जाता है और वाइफ से बातें करता है कि, 'आज क्या सब्ज़ी बना रही हो?' 'अरे, यहाँ बैठ न, सीधा रह न भाई!' किसी भी जन्म में सीधा नहीं रहा। भटक भटक भटक ही करता रहा है, अनंत जन्मों से।

अपने यहाँ पर बैंड बाजे बजते हैं तब भी बाराती तन्मयाकार नहीं होते। उसके बाद वह आवाज़ उनके लिए सहज हो जाती है। संगीत तो पसंद आए ऐसी चीज़ है, कान को प्रिय लगने वाली चीज़ है। फिर भी लोग तो उस समय व्यापार में रहते हैं और न जाने कहाँ-कहाँ पड़े होते हैं? व्यापार में रहते हैं या नहीं?

अभी भी यहाँ बैठे-बैठे आपका चित्त चला जाता है। व्यापारियों का चित्त कैसा होता है कि एकदम लपटा हो (बार-बार एक ही चीज़ में जाना) चुका होता है!

अरे, यहाँ पर माला फेरता है और विकारों में खोया हुआ होता है! माला तो उसे कहते हैं कि माला हाथ में पकड़ते ही चित्त अस्थिर नहीं होता। तभी माला हाथ में पकड़नी चाहिए, वर्ना माला पकड़ना वह तो जोखिम है।

चित्त उपस्थित हो तभी कार्य होता है

कोई बच्चा पढ़ाई कर रहा हो तब लोग ऐसा नहीं कहते, कि तेरा चित्त ठिकाने रखकर पढ़। क्योंकि यहाँ इस तरह पढ़ रहा होता है और चित्त क्रिकेट में होता है उस समय।

प्रश्नकर्ता : विद्यार्थी बहुत पढ़ाई करते हैं फिर भी परीक्षा में भूल जाते हैं। उसका क्या कारण है?

दादाश्री : चित्त खेलने में न जाए और पढ़ाई करें तो नहीं भूलेंगे। तू पढ़ता है तब चित्त खेलने में चला जाता है। चला जाता है न?

प्रश्नकर्ता : नहीं।

दादाश्री : तो नहीं भूलेंगे। चित्त को हाज़िर रखकर पढ़ाई की जाए तो नहीं भूलेंगे। आपका बच्चा पढ़ाई कर रहा हो और आप समझते हो कि ये कितनी अच्छी तरह से पढ़ रहा है, लेकिन अरे, वह होता है क्रिकेट में! शब्द पढ़ता है उसके बावजूद चित्त रहता है क्रिकेट में! ऐसा होता है या नहीं होता? देखो, दोनों काम साथ में चलते हैं न? तो दोनों ही बिगड़ते हैं, है न! न क्रिकेट अच्छी तरह से देखा जा सकता है, न यह याद रहता है, हं। चित्त भटक रहा हो न, तो फिर कुछ भी याद नहीं रहता। वह सब सिर्फ मिकेनिकली करता रहता है। यदि चित्त हाज़िर हो तभी कार्य होता है, वर्ना नहीं होता। आप कॉलेज में जाते हो तो कई बार जब लेट हो जाते हो, तो खाना खाते समय आपका चित्त कॉलेज में होता है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ, बहुत देर हो गई हो तो ऐसा होता है।

दादाश्री : तो इस तरह खाना खाते रहते हो और चित्त वहाँ गया होता है!

चित्त एब्सेन्ट (गैरहाज़िर) हो, उससे खाया भी नहीं जाता।

जहाँ पर चित्त प्रेज़न्ट (हाज़िर) नहीं रहता, वहाँ चित्त एब्सेन्ट होता है, इससे कोई भी कार्य फलता नहीं। यानी अच्छा नहीं हो पाता।

फलता नहीं यानी क्या, कि आपका अस्पताल है न, तो आपका टाइम है या नहीं, अस्पताल में जाने का? अब उस टाइम से ज़रा पंद्रह-एक मिनट लेट हो जाए, तो आपका चित्त वहाँ चला जाता है अस्पताल में और आप चित्त रखे बगैर यहाँ खाना खाते हैं। तो आपकी पत्नी समझ जाती है कि यह शरीर खाना खा रहा है। ऐसे चित्त की एब्सन्स में खाना खाना वह भयंकर गुनाह है। आपको वहाँ जाने की ज़रूरत नहीं है, अस्पताल में जो होना हो वह होगा। क्योंकि उससे फायदा नहीं होता है। आप वहाँ जा नहीं सकते। यह तो सिर्फ चित्त की ही झंझट है। इसलिए चित्त को उपस्थित रखकर फिर आराम से यह सब जानना चाहिए कि पकौड़े में क्या-क्या डाला है। उस पकौड़े में क्या-क्या डाला है, वह भी पता नहीं चलता। फिर उससे रोग उत्पन्न होते हैं। इसलिए चित्त को हाज़िर रखना। हर एक कार्य में चित्त को हाज़िर रखना, संडास जाते समय भी। चित्त हाज़िर नहीं हो न, तो ठीक से संडास भी नहीं आएगी आपको।

चित्त को मोड़ने के उपाय

आपको समझ में आया मैं क्या कहना चाहता हूँ? आपने चित्त की गैरहाज़िरी में खाना खाया है क्या?

प्रश्नकर्ता : लेकिन चित्त तो घूमता ही रहता है।

दादाश्री : खाना खाते समय भी हाज़िर नहीं रहता? ऐसे क्या दुःख आ पड़े हैं, कि खाना खाते समय भी हाज़िर नहीं रहता? अगर बहुत जल्दी हो तो क्या दो हाथों से खाना खा लेना चाहिए? चित्त

से कहना, 'बैठ यहाँ पर, चल क्या-क्या खाना है वह मुझे बता एक-एक करके!'

चित्त के वहाँ पहुँचने से हेल्प होगी या यहाँ पर हेल्प होगी? हेल्प होगी क्या?

प्रश्नकर्ता : इतना भी काबू नहीं है।

दादाश्री : लो फिर! सब आउट ऑफ कंट्रोल (बेकाबू) हो गया है? इसलिए इन सभी को कंट्रोल में ला देता हूँ। एक घंटे में ही कंट्रोल में आ जाते हैं, हमेशा के लिए, परमानेन्ट कंट्रोल। चित्त तो फिर हटेगा ही नहीं। तब तक दादा की यह फोटो ले जाओ और दादा भगवान का नाम लेना न, कि दादा भगवान को नमस्कार करता हूँ, पाँच-दस मिनट तक बोलना तो चित्त वापस आ जाएगा। उस समय चित्त स्थिर रहेगा।

चित्त को शांति हो जाए ऐसा हो, तो फिर वह नहीं भटकेगा, बाहर नहीं जाएगा। चित्त बाहर न जाए, ऐसा आपको करना है। अपना यह विज्ञान कैसा है कि चित्त अपने पास रहता है, हटता नहीं। चित्त बाहर चला जाए तो यह सारा ही हुल्लड़ वगैरह चलता ही रहता है। चित्त बाहर नहीं जाना चाहिए। खाना खाने के बाद में कुछ समय आराम करने के बाद कुछ देर घंटा-आधा घंटा (दादा की पुस्तक) पढ़ी जाए तो चित्त फर्स्ट क्लास हो जाता है। उसके बाद चित्त बाहर जाता ही नहीं। तो चित्त को राह पर लाने के लिए ऐसा सब करना पड़ेगा न? हमारा चित्त कहाँ-कहाँ भटकता होगा?

प्रश्नकर्ता : कहीं भी नहीं भटकता।

दादाश्री : हाँ, अत: जहाँ है वहीं पर सब रखो। हम जहाँ पर होते हैं न, वहीं पर यह सब होता है। कोई इधर-उधर नहीं होता, कुछ भी नहीं। जहाँ रहते हैं वहीं पर सबकुछ, राजा भी वहाँ और सेना भी वहाँ। कोई इधर-उधर नहीं जाता। हमारे साथ बैठो तो आपकी सेना भी वैसी ही हो जाएगी, विनय वाली। चित्त तो इस शरीर का

मालिक है, उसे गैरहाज़िर नहीं रखना चाहिए। आप चित्त को नमस्कार करते हो? कृपालुदेव कहते थे, 'हे चित्त, तुझे भी हमारे नमस्कार हैं!'

चित्त को गैरहाज़िर मत रखो

यह सत्संग सुन रहे थे, उस समय एकाग्रता हुई थी न? उस समय अंदर अंतरशांति उत्पन्न हो जाती है। आपके साथ ऐसा नहीं हुआ था? हाँ, और लुटेरों की पुस्तक पढ़ें तो उसमें एकाग्रता हो जाती है। वह तो चित्त का स्वभाव है। यह एकाग्रता आगे बढ़ाती है जबकि वह एकाग्रता नीचे गिरा देती है, स्लीपरी (फिसलाने वाली) है।

और हम जब बोलते हैं न, तब हमारा चित्त बस उसे सुनता ही रहता है। खुश, खुश, खुश, खुश होता रहता है, ऐसे, जैसे कि मुरली सुन रहा हो। हमारा चित्त तो जैसे सांप मुरली सुनकर नाचता है, उसी तरह से नाचता रहता है। बाहर भटकने क्यों जाएगा वह? भटकता किसका है? घर पर मज़ा नहीं आता तब। खुद को अंदर मज़ा नहीं आता तब इधर भटकता है, उधर भटकता है, अंत में ताज (होटेल) में जाकर चाय भी पी आता है। चाय-नास्ता कर आता है।

चित्त की गैरहाज़िरी नहीं होनी चाहिए। बाकी सब की गैरहाज़िरी होगी तो चलेगा। बुद्धि गैरहाज़िर होगी तो चलेगा। चित्त तो एब्सेन्ट रहना ही नहीं चाहिए किसी भी स्थिति में। मैं आपके साथ बातचीत कर रहा हूँ, उसमें मेरा चित्त गैरहाज़िर हो जाए तो फिर क्या रहेगा? पूरा चित्त ही है, जो अनंतकाल से अशुद्ध होता आया है, वह मेरी उपस्थिति में मेरे सामने एक चित्त रहेगा तो शुद्धि होती ही रहेगी। और कभी न कभी चित्त को शुद्ध करना ही है। यह चित्तशुद्धि का उपाय है। आप हम से यह पूछो और यदि आपकी एकाग्रता से चित्त स्थिर रहेगा तो शुद्ध होता ही रहेगा।

चित्त भटकता है अशुद्धता के कारण

चित्त तो उसकी अशुद्धता के कारण भटकता है। चित्त शुद्ध हो जाए तो नहीं भटकता।

यह संसार ऐसा है कि निरंतर चित्त की अशुद्धि ही होती रहती है। इसलिए इन लोगों ने धर्म रखा है कि धर्म, चित्त की शुद्धि करता रहे। धर्म नहीं हो तो चित्त अशुद्ध हो जाता है और फिर अधोगति में चला जाता है।

रास्ते में सामने कोई मिल जाए और आपको गालियाँ देता रहे कि यह आदमी गैरजिम्मेदार है, बहुत नालायक है, ऐसा-वैसा बोले तो क्या कहते हो?

प्रश्नकर्ता : अब तो कुछ भी कहते ही नहीं न!

दादाश्री : यानी आप अपना चित्त अशुद्ध नहीं करते। चित्तअशुद्धि का कारण यह है। वह बोलता है और आप भी सामने बोलते हो, उससे आपके चित्त की अशुद्धि हो जाती है। लेकिन आप सामने कुछ भी नहीं करो, तो चित्त की अशुद्धि नहीं होती।

सिर्फ चित्त ही अशुद्ध होता रहता है। उस चित्त की ही शुद्धि करनी है। उसके बजाय लोग न जाने क्या-क्या शुद्ध करने लगे हैं!

चित्तशुद्धि के उपाय

प्रश्नकर्ता : चित्तशुद्धि कैसे करनी है?

दादाश्री : हो सके उतनी एकाग्रता का साधन हो न, उससे करनी है। अच्छे संत हों, उनकी सेवा से करनी है। या फिर माँ-बाप की सेवा से बहुत चित्तशुद्धि होती है।

ये अपने यहाँ तो, हम ज्ञान से चित्तशुद्धि करते हैं। यह अपना ज्ञान चित्तशुद्धि का है। लेकिन ज्ञान न लिया हों ऐसे बाहर के लोगों को वह करना चाहिए। माँ-बाप और गुरु की सेवा करनी चाहिए, उससे चित्तशुद्धि होती है।

फिर ओब्लाइजिंग नेचर रखो, सभी लोगों के अच्छे काम करो, तो चित्त शुद्ध होता जाएगा दिनोंदिन। लोगों को आप सुख दोगे तो

आपकी चित्त की शुद्धि होगी और दुःख दोगे तो शुद्ध हुआ होगा फिर भी अशुद्ध हो जाएगा। यों करते-करते, सुख देते-देते चित्तशुद्धि कुछ हद तक होती है, कुछ लिमिट तक। उसके बाद उससे आगे फिर नहीं हो पाती। आगे फिर मार्गदर्शक (ज्ञानी) मिलते हैं, तब दिन बदलते हैं।

प्रश्नकर्ता : अच्छे वाचन से चित्तशुद्धि होती है?

दादाश्री : हाँ, होती है। अच्छे वाचन से भी धीरे-धीरे चित्त की शुद्धि होती है। लेकिन फिर जिस हद तक आप चित्त की शुद्धि करते हैं वापस उतना ही अशुद्ध कर देते हैं इसलिए फिर फायदा क्या रहा आपके पास? दस प्रतिशत जितनी आपने चित्त शुद्धि की और शाम तक किसी के साथ झंझट की तो उससे बीस प्रतिशत अशुद्धि हो जाती है। यानी आपके घर में दस प्रतिशत तो नुकसान ही रहा न? यानी एक ही बार चित्तशुद्धि कर लें तो शुद्ध हो जाता है सबकुछ।

सेल्फ का रियलाइज़ होने पर हमेशा की शुद्धि

जब तक चित्त की शुद्धि नहीं हो जाती, तब तक ऐसे भटकना है। चित्त की शुद्धि हो जानी चाहिए।

प्रश्नकर्ता : चित्त की शुद्धि के लिए मुख्य उपाय क्या है?

दादाश्री : आज के मनुष्यों से स्वयं हो सकें ऐसा नहीं है इसलिए ज्ञानी पुरुष खुद कर देते हैं। आपकी चित्त शुद्धि होने के बाद आपका चित्त एकाग्र ही रहेगा। फिर तो इधर-उधर ले जाना हो तब भी नहीं जाएगा! फिर अगर आप कहोगे कि, 'इधर-उधर जा न।' तो कहेगा, 'नहीं, अब नहीं।'

अशुद्ध कब तक है? तो कहते हैं, जब तक उसे जगत् के लालच हैं, इसमें सुख है, इसमें सुख है, इसमें सुख है। वह जब खुद के घर का सुख देखता है फिर बाहर नहीं निकलता। यानी हम स्वरूप का सुख दिखा देते हैं और चित्त की शुद्धि कर देते हैं और फिर

दिव्यचक्षु दे देते हैं। जो खुद के स्वरूप का सुख देखता है, फिर वह बाहर नहीं भटकता।

चित्त अर्थात् ज्ञान-दर्शन। ज्ञान-दर्शन की अशुद्धि हैं। 'मैं चंदुभाई हूँ' वह ज्ञान अशुद्ध ज्ञान है और वह श्रद्धा भी अशुद्ध है। यानी ज्ञान और दर्शन दोनों अशुद्ध हैं, इसलिए चित्त अशुद्ध हो गया है और आप जो हो, वह आपका ज्ञान प्रकट करें, तो चित्त शुद्ध हो जाता है। आप जो हो, सेल्फ का रियलाइज़ करने पर चित्त शुद्ध होता है।

❖❖❖❖❖

[7]

बुद्धि-अहंकार का क्षय ज्ञानप्रकाश से

फायदा-नुकसान दिखाने का ठेका बुद्धि का

प्रश्नकर्ता : अब एक प्रश्न यह रहता है कि बुद्धि यानी क्या? किसी भी चीज़ या सिद्धांत को जैसा है उस स्वरूप में एक्सेप्ट (स्वीकार) करने में बाधक हो उसे बुद्धि कहते हैं?

दादाश्री : इसका और बुद्धि का लेना-देना नहीं है। बुद्धि यानी क्या? फायदा और नुकसान, दोनों देखती है, उसी को बुद्धि कहते हैं। व्हेर इज़ प्रॉफिट एन्ड व्हेर इज़ लॉस (कहाँ फायदा है और कहाँ नुकसान है)? वह तो सारी उल्टी समझ कहलाती है। किसी भी वस्तु या सिद्धांत को जैसा है उस रूप में एक्सेप्ट करने में बाधा डालना, ऐसी रोंग (उल्टी) समझ करती है।

बुद्धि तो, बस में बैठे तो भी ऐसा देख लेती है कि कहाँ पर फायदा है और कहाँ पर नुकसान है। जहाँ जाओ वहाँ पर फायदा-नुकसान, दोनों ही दिखाती रहती है और उलझाती रहती है, उसे बुद्धि कहते हैं। यह (विपरीत) बुद्धि ही बेचारे को भटकाती रहती है। रास्ते चलते भी फायदा-नुकसान देखती है।

ट्रेन में चढ़े तो भी ऐसा देख लेती है कि फायदा-नुकसान कहाँ है। भीड़ हो न, तो भीड़ में लोगों को धक्का मारना सिखाती है, कि

मार धक्का और आगे खिसक। इस तरह से बुद्धि सीधा नहीं रहने देती। मनुष्य को चैन से बैठने ही नहीं देती। 'अरे, यहाँ ट्रेन में कहाँ रुपये हैं?' तब कहेगी, 'लेकिन जगह की कीमत है।'

जहाँ जाएँ वहाँ फायदा और नुकसान दिखाती है या नहीं दिखाती?

प्रश्नकर्ता : दिखाती ही है।

दादाश्री : हं। कभी आपको ऐसा लगता है, कि 'हम यहाँ से वहाँ तक गए, लेकिन फायदा नहीं हुआ'। तो वह किसने दिखाया? बुद्धि दिखाती है।

यहाँ सत्संग में आते हैं न, तो आते ही देखती है कि कहाँ पर अच्छी जगह है। मकान खरीदना हो तो अच्छा मुहल्ला ढूँढती रहती है। अच्छी चीज़ लेने गया हो वहाँ फायदा देखती है। दुकान पर जाए तो फायदा-नुकसान देखती रहती है। घर में किसी से तेल गिर जाए, नुकसान हो जाए, तो बुद्धि वहाँ पर परेशान कर देती है।

यह तो सारा टेम्परेरी एडजस्टमेन्ट (अस्थायी आयोजन) है और उसमें अच्छा-बुरा, उल्टा-सीधा आपकी बुद्धि आपको दिखाती रहती है। तीस साल तक दोस्त अच्छा था और एक दिन किसी ने कहा कि, 'आपके दोस्त ऐसा कह रहे थे।' तो दूसरे दिन आपके लिए वह खराब हो जाता है। बुद्धि दिखाती है कि, 'इन लोगों को है अपनी कोई कीमत? अपनी कीमत पहले जितनी थी उतनी अब नहीं रही। अभी कम हो गई ऐसा लगता है।' अरे, यहाँ किसलिए फायदा-नुकसान? इसके कोई सौदे करने हैं आपको? लेकिन बुद्धि का स्वभाव ही ऐसा है, फायदा-नुकसान दिखाती है। बुद्धि तो हमेशा संसार में, यह फायदा है और यहाँ नुकसान है, ये दोनों दिखाती है। उससे आगे और कुछ दिखाने की कोई लाइन उसे नहीं आती है।

बुद्धि क्या काम करती है? चारों तरफ से आपका नुकसान कहाँ हो रहा है, कहाँ दु:ख होता है, कहाँ पर परेशानी आती है, संसार की सभी बाबतों में वह सावधान रहती है और सावधानीपूर्वक काम करने

जाती है। और व्यापार में कोई परेशानी आए तो किस तरह से उसका एन्ड (अंत) लाना है, वह काम करती रहती है। उसका उपाय ढूँढ निकालती है, रास्ता ढूँढ निकालती है, बस।

बुद्धि के प्रकार

बुद्धि के दो प्रकार : (1) सम्यक् बुद्धि (2) विपरीत बुद्धि।

(1) सम्यक् बुद्धि अर्थात् सीधी दिशा में चलती हुई बुद्धि। समकित होने के बाद ही सम्यक् बुद्धि उत्पन्न होती है और वह फिर सीधा ही दिखाती है। जैसा है वैसा दिखाती है। किसी को ही सम्यक् बुद्धि प्राप्त होती है। (2) विपरीत बुद्धि :- जहाँ सम्यक् बुद्धि का अभाव, वहाँ विपरीत बुद्धि अवश्य होती ही है। विपरीत बुद्धि यानी मोक्ष के हेतु से विपरीत। बुद्धि का स्वभाव ही है कि ऐसा दिखाए ताकि संसार की ही नींव मज़बूत होती रहती है। कभी भी मोक्ष में नहीं जाने दे, वह विपरीत बुद्धि है। बुद्धि संसारानुगामी है यानी कि संसार का ही हिताहित रखने वाली है, मोक्ष का नहीं।

भौत्तिक सुखों में सुख दिखाए, वह विपरीत बुद्धि

यह सारी बुद्धि विपरीत क्यों कहलाती है ? क्योंकि वह स्वाभाविक बुद्धि नहीं है, इसलिए। स्वाभाविक नहीं है अर्थात् संसारानुगामी है इसलिए विपरीत कहलाती है। वह हमें संसार में भटकाने वाली है। भले ही देवगति में जाएँ लेकिन वापस यहाँ आकर गधा बनना है! उसी प्रकार इन चार गतियों में भटकते रहना है! अर्थात् यह बुद्धि भटकाने वाली है।

भौतिक सुखों में सुख दिखाती है, वह विपरीत बुद्धि कहलाती है और सुख मोक्षमार्ग में है या फिर आत्मा में है ऐसा जो दिखाती है वह सम्यक् बुद्धि कहलाती है। विपरीत बुद्धि का ज़ोर बहुत है, ज़बरदस्त। इसलिए हम, आपकी बुद्धि को सम्यक् करने के लिए, इस प्रकार आपको प्रश्नों के जवाब देते हैं और आपको खुलासे मिलते हैं, हर प्रकार के खुलासे मिलते हैं।

ज्ञानी के पास बैठने से होती है बुद्धि सम्यक्

यह विपरीत बुद्धि है, इसे सम्यक् करनी है। विपरीत बुद्धि सम्यक् किस प्रकार से होगी? एक ही सम्यक् बुद्धि वाले को देखता है, तो विपरीत बुद्धि वाला समझ जाता है कि अपना यह गलत है। इसलिए बदल देता है, तुरंत देखने से। कहने से, उपदेश से नहीं बदलेगी, उपदेश से बदलेगी ही नहीं। देखने से ही बदलेगी।

ज्ञानी पुरुष के पास बैठते हैं, परिचय में रहते हैं तब वह बुद्धि सम्यक् बुद्धि होती है। वह बुद्धि इतना अच्छा चलाती है और मोक्ष में ले जाती है, ऐसे विचारों वाली होती है। वह बुद्धि काम आती है। तब तक तो यह विपरीत बुद्धि है।

बुद्धि बढ़ें वैसे बढ़ता है संताप

जैसे-जैसे बुद्धि बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे संताप बढ़ता जाता है। दो साल के बच्चे की माँ मृत्यु शैय्या पर हो, तो उसे कोई असर नहीं होता, हँसता-खेलता रहता है। जबकि बीस साल के बेटे को बहुत संताप होता है। अत: बुद्धि बढ़ने से संताप बढ़ा। इन मज़दूरों को बिल्कुल चिंता नहीं होती। वे तो रोज़ाना आराम से सोते हैं। जबकि ये सेठ लोग चिंता किया करते हैं। अरे, रात को भी चैन से नहीं सोते। ऐसा क्यों? क्योंकि बुद्धि बढ़ी, इसलिए। बुद्धि के प्रतिपक्ष में संताप, काउन्टर वेट में होता ही है।

बुद्धि हो वहाँ 'मैं करता हूँ' ऐसा अहंकार होता ही है और इसलिए चिंता रहा करती है। भगवान से वही दूर रखती है।

बुद्धि के चश्मे से देखता है अहंकार

हर एक की बुद्धि तो खराब नहीं होती। बुद्धि की विपरीतता हर एक में नहीं होती। ऐसी जो बुद्धि है, वह तो लोगों को उजाला देती है, प्रकाश देती है, कुछ ठंडक (शांति) भी देती है।

प्रश्नकर्ता : तो बुद्धि सामान्य भाव से ठीक है?

दादाश्री : अर्थात् बुद्धि कोई खराब चीज़ नहीं है लेकिन उसे अहंकार की वजह से पॉइज़नस कर दिया है और जिस बाबत में अहंकार होता है उस बाबत में प्रकाश बिल्कुल भी नहीं होता, वहाँ अंधा हो जाता है। जिस कोने में अहंकार बढ़ गया हो न, वहाँ अंधा हो जाता है। वह अहंकार तो, नॉर्मल अहंकार हो तो उस कोने में प्रकाश होता है।

इगोइज़म हमेशा अंधा होता है। इगोइज़म को दिखता नहीं है, कभी भी। उसकी आँखें नहीं होती। बुद्धि की आँखों से कभी-कभी देखता है। बाकी, उसकी खुद की आँखें नहीं होतीं। अंधे के संग से पाप ही बंधेगा न?

अहंकार स्वभाव से ही अंधा

अहंकार का स्वभाव कैसा है? मैं जो कर रहा हूँ वही सही है। पक्का, ऐसा ही मानता है। क्योंकि अहंकार स्वभाव से ही अंधा है।

प्रश्नकर्ता : अर्थात् पहले से ही ऐसा मानता है कि मैं जो कर रहा हूँ वही सही है?

दादाश्री : पहले से ही ऐसा मानता है। पहले से ही तय करके चलता है। इसलिए यह अंधा मार खाता ही रहता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अंधे की मदद के लिए बुद्धि तो होती है न?

दादाश्री : बुद्धि तो होती है न, लेकिन वह बुद्धि क्या करे? बुद्धि प्रकाश देती है, लेकिन अंधा प्रकाश का लाभ कितना उठाएगा?

प्रश्नकर्ता : लेकिन वह बुद्धि की मदद लेता है न? नॉर्मल कोर्स में से आगे बढ़ने के लिए बुद्धि की मदद तो लेता है न?

दादाश्री : बुद्धि की वजह से अहंकार को थोड़ा धुंधला दिखता

है, लेकिन अंधे को लाइट कितनी दिखेगी? (अहंकार) खुद अंधा है इसीलिए उसके सभी बच्चे वैसे ही होंगे न?

अहंकार के 'मीडियम' से बुद्धि उत्पन्न होती है

प्रश्नकर्ता : बुद्धि और ज्ञान प्रकाश इन दोनों में क्या फर्क है?

दादाश्री : बहुत फर्क है, बुद्धि, वह डिरेक्ट प्रकाश नहीं है और ज्ञान प्रकाश, वह डिरेक्ट प्रकाश है, तो दोनों में से कौन सा अच्छा है?

प्रश्नकर्ता : डिरेक्ट अच्छा है।

दादाश्री : डिरेक्ट अच्छा है न? अब ज्ञान की और बुद्धि की डेफिनेशन (परिभाषा) बताऊँगा। व्हॉट इज़ द ट्रू (सही) डेफिनेशन?

प्रश्नकर्ता : इनकी डेफिनेशन नहीं दी जा सकती।

दादाश्री : बुद्धि की बात जाने दो, लेकिन हमें बाहर का एक उदाहरण देकर समझाना हो, सिमिली (उपमा), तो इन्डिरेक्ट प्रकाश देखा है तुमने? कहाँ देखा है?

प्रश्नकर्ता : यह ट्यूबलाइट वगैरह है, वह सब।

दादाश्री : ट्यूबलाइट, वह इन्डिरेक्ट प्रकाश है? नहीं। यह ट्यूबलाइट है और यहाँ प्रकाश आ रहा है वह डिरेक्ट ही है न!

इन सूर्यनारायण का प्रकाश एक बड़ा ज़बरदस्त दर्पण हो और उस पर पड़ता है, तो वह डिरेक्ट लाइट कहलाएगी और दर्पण ज़रा टेढ़ा ऐसे डिग्री में रखा हो तो उसका प्रकाश इस रसोई में पड़ता हो तो वह कैसी लाइट कहलाएगी? इन्डिरेक्ट लाइट। वह भी सूर्य का ही प्रकाश है लेकिन इन्डिरेक्ट लाइट है। डिरेक्ट लाइट नहीं है वह। ऐसा होता है न? और उससे रसोई में काम किया जा सकता है न? उसका उजाला आए तो रसोई में लाभ होता है न? इसी प्रकार से

इस इन्डिरेक्ट प्रकाश से सभी मनुष्य और पूरी दुनिया चल रही है। अब प्रकाश तो आत्मा का ही है, लेकिन उसमें दर्पण था और इसमें क्या होगा?

प्रश्नकर्ता : आत्मा का भाव?

दादाश्री : नहीं, इसमें इगोइज़म है। इन्डिरेक्ट प्रकाश यानी क्या? आत्मा का प्रकाश ऐसे पड़ता है, वह अहंकार के थ्रू (द्वारा) आता है। इस तरफ आत्मा है, बीच में अहंकार है और अहंकार के थ्रू जो इस तरफ प्रकाश पड़ता है, वह सारा ही बुद्धि है और हमारा बीच वाला अहंकार खत्म हो चुका है इसलिए फिर ऐसे सीधा ही प्रकाश आता है, वह ज्ञान है!

अर्थात् अहंकार के 'मीडियम' (माध्यम) से बुद्धि खड़ी हो गई है। अहंकार का मीडियम खत्म हो जाए तो बुद्धि नहीं रहती। फिर डिरेक्ट प्रकाश आता है। मुझे 'डिरेक्ट' प्रकाश मिलता है।

बुद्धि पर प्रकाशक, ज्ञान स्व-पर प्रकाशक

ज्ञान वह तो आत्मा का डिरेक्ट प्रकाश है, फुल लाइट है। जैसा है, वैसा यथार्थ दिखाएँ वह ज्ञान है। बुद्धि पर प्रकाशक है, स्वयं प्रकाशक नहीं है। जबकि ज्ञान स्वयं प्रकाशक है। खुद स्वयं ज्योतिर्मय है और पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशित करने की उसमें अनंत शक्ति हैं। जैसे कि सूर्य स्व-पर प्रकाशक है, जबकि चंद्र पर प्रकाशक है।

संपूर्ण ज्ञान प्रकाश के आगे बुद्धि वह तो सूर्य के सामने दीये के समान है। हम में संपूर्ण ज्ञान प्रकाश है। इसलिए बुद्धि हम में नाम मात्र भी नहीं है। हम खुद अबुध हैं। हमें एक किनारे पर अबुध पद प्राप्त हुआ ठीक उसके सामने वाले किनारे पर सर्वज्ञ पद आकर खड़ा हो गया। जो अबुध होता है, वही सर्वज्ञ हो सकता है।

अहंकार जाने पर हो जाते हैं अबुध

डिरेक्ट प्रकाश का जब उघाड़ होता है न, तो सब काम हो

जाता है। खुद परमात्मा बन जाता है। खुद आत्मा को जानता है न, तब खुद परमात्मा बन जाता है। जब अहंकार खत्म हो जाता है तब परमात्मा बन जाता है। अहंकार की वजह से तो मनुष्य की तरह रहा हुआ है जीवात्मा और अहंकार है तब तक आवरण हैं। अहंकार नहीं होता तब उसके साथ में बुद्धि भी नहीं होती। इन दोनों का संबंध हैं। एक हो तो दूसरा होता ही है और दूसरा हो तो एक होता ही है। अहंकार और बुद्धि का संबंध है। तो हमारा अहंकार चला गया। उसी दिन बुद्धि भी चली गई। हम में अहंकार बिल्कुल भी नहीं है। हम में एक सेन्ट परसेन्ट भी अहंकार नहीं होने से सीधा डिरेक्ट प्रकाश मिलता है, वह हमारा ज्ञान है।

सारे संसार के अनंत सब्जेक्टस (विषयों) को जानें, तो भी उनका समावेश बुद्धि में ही होता है और 'मैं कौन हूँ' उतना ही जाने, वह ज्ञान है। इसके अलावा तेरा सभी जाना हुआ कुछ काम आने वाला नहीं है। अहंकारी ज्ञान वह बुद्धि, और निरंहकारी ज्ञान वह ज्ञान है। स्वरूप का ज्ञान, वही ज्ञान है।

अज्ञानता के कारण कायम अहंकार

प्रश्नकर्ता : अहंकार क्या है? कहाँ से आया?

दादाश्री : वह विनाशी चीज़ है। कहीं से आया नहीं है। वह उत्पन्न हो जाता है और विलय हो जाता है। फिर डॉक्टर से कहता है कि 'साहब, मैं मर जाऊँगा, मुझे बचाइएगा'। यह जो भुगतता है न, वह अहंकार है।

प्रश्नकर्ता : अहंकार किसे आया?

दादाश्री : जो नासमझी है, उसे। अज्ञान को अहंकार आया।

प्रश्नकर्ता : अज्ञान किसका है?

दादाश्री : दो चीज़ें हैं, अज्ञान और ज्ञान। ज्ञान अर्थात् आत्मा और अज्ञान अर्थात् अनात्मा। उस अज्ञान को अहंकार आया। उसी से

यह सब खड़ा हो गया। इसलिए रात-दिन चिंता-परेशानी, अरे संसार में अच्छा न लगे तो भी पड़े रहना पड़ता है न? कहाँ जाएँ फिर? कहाँ जा सकते हैं? वहीं के वहीं। यानी यहाँ पलंग में लेटे रहना है न, नींद नहीं आए फिर भी?

प्रश्नकर्ता : अहंकार की शुरुआत कैसे हुई, अहंकार कहाँ से उत्पन्न हुआ?

दादाश्री : यह अहंकार, यही अज्ञान है न! अज्ञान था न, उसी से अहंकार हो गया। ऐसा है, ये अज्ञान और ज्ञान दो अलग चीज़ें हैं।

प्रश्नकर्ता : इन सभी रूट कॉज़ में संस्कारों का ढेर पड़ा हुआ है, कितने ही जन्मों से?

दादाश्री : मूलतः अज्ञानता है। खुद को खुद की अज्ञानता है। उस रूट कॉज़ से यह सब उत्पन्न हो गया है। यदि वह अज्ञानता खुद सज्ञानता में आ जाए, तो यह सब विलय हो जाता है। अज्ञानता इसका कारण है। अज्ञानता के कारण अहंकार उत्पन्न हुआ है।

आत्मा लोहा तो यह अहंकार वह ज़ंग

ये जो दुःख होता है, वह अहंकार को होता है और सुख होता है, वह भी अहंकार को होता है। बीच में इस अहंकार का पच्चर (दखल) है और वही अज्ञानता है। अहंकार अर्थात् 'मैं करता हूँ' और 'मैं भोगता हूँ', वही अहंकार है।

अब वास्तव में अहंकार सुख भी नहीं भोगता और दुःख भी नहीं भुगतता, वह तो अहंकार ही करता रहता है।

प्रश्नकर्ता : जिस प्रकार लोहे पर ज़ंग लग गया उस प्रकार...

दादाश्री : ज़ंग लगा, वह तो आत्मा पर। आत्मा से लेना-देना है। आत्मा लोहा हो न, तो यह अहंकार वह ज़ंग है। लेकिन यह जो

अहंकार कहता है कि, 'मैंने भोगा', अरे, वह उसने भोगा ही नहीं है। यह तो इन्द्रियों ने भोगा है और खुद अहंकार करता है कि 'मैंने भोगा है'। इसलिए कृष्ण भगवान ने कहा है कि 'इन्द्रियाँ, इन्द्रियों में बरतती हैं, तू किसलिए अहंकार कर रहा है?' स्वभाव से बरतती है। यह नहीं समझने की वजह से बेकार ही मार खाता रहता है। न तो कृष्ण भगवान को समझते हैं, न ही महावीर भगवान को समझते हैं। वे सही बात कहते हैं न! इसलिए सिर्फ बात को समझने की ज़रूरत है।

ज़ंग उत्पन्न होने के बाद लोहा लोहे का काम करता है और ज़ंग, ज़ंग का। लोहा ज़ंग में दखल नहीं देता, वह ज़ंग लोहे में हाथ नहीं डालता। इसी प्रकार इसमें, इसमें कौन सा ज़ंग लगता है? वह अहंकार (मूल अहम्) और मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, अंत:करण रूपी ज़ंग लगता है। तो वे अपना कार्य करते रहते हैं। आत्मा, आत्मा का कार्य करता रहता है। जब तक ये (अंत:करण का) कार्य होते हैं तब तक आत्मा आइडल (उदासीन रूप से) प्रकाश ही देता रहता है। जब अंत:करण के सभी काम खत्म हो जाते हैं तब आत्मा का काम शुरू होता है। या फिर अंत:करण चल रहा हो और ज्ञानी मिल जाएँ और वे कहें कि 'अरे, तू यह नहीं है, तू इसे देख', तो देखना शुरू हो जाता है। वह अलग हो जाता है। आप ये देखते रहो कि 'चंदूभाई क्या कर रहे हैं' तो वह ज्ञान केवलज्ञान तक पहुँचेगा।

अहम् और अहंकार का भेद

प्रश्नकर्ता : जिसे अहम् कहते हैं और अहंकार ये एक ही है या अलग-अलग हैं?

दादाश्री : अलग-अलग हैं, शब्द ही अलग हैं न?

प्रश्नकर्ता : उनमें भेद क्या है?

दादाश्री : कोई अहम् आत्मा कहे तो दिक्कत नहीं है, लेकिन अहंकार आत्मा कहे तो? क्या होगा? अहम् हो तो हर्ज नहीं है,

अहंकार हो तो हर्ज है। अहम् वह अहंकार नहीं है। अहम् ब्रह्मास्मि, उसमें अहम् का उपयोग तो होता है न! क्योंकि अहम् तो होना ही चाहिए, लेकिन किस का? खुद के स्वरूप का अहम् होना चाहिए। जो नहीं है उसका अहम् क्यों होना चाहिए? अहम् पॉइज़न नहीं है, अहंकार पॉइज़न है। अहम् अर्थात् 'मैं'।

प्रश्नकर्ता : उसे अस्तित्वपना कहते हैं?

दादाश्री : हाँ, अस्तित्व ही कहलाता है। उसका अस्तित्व तो है ही। अस्तित्व का तो जीवमात्र को भान है ही कि 'मैं हूँ', लेकिन वस्तुत्व का भान नहीं है उसे। 'मैं क्या हूँ' वह भान नहीं है इसलिए अहंकार उत्पन्न हो गया है। खुद का स्वरूप है वहाँ 'मैं हूँ' बोलना वह अहंकार नहीं है। यह सोना है इसे एक दिन कोई व्यक्ति वाणी दे दे और वह कहे कि, 'मैं सोना हूँ', तो क्या हम ऐसा कहेंगे कि 'अहंकार कर रहा है?' कहेंगे क्या? नहीं। और लोहा कहे कि 'मैं सोना हूँ' तो? इसलिए 'हम खुद कौन हैं', इतना जानना चाहिए। 'मैं चंदूभाई हूँ' वह आरोपित भाव है। जहाँ है वहाँ बोले न, तो अस्तित्व तो है ही आपका। 'मैं हूँ', ऐसा बोलने का आपको राइट, अधिकार है ही, लेकिन 'मैं कौन हूँ' और 'मैं क्या हूँ' उसका भान नहीं है।

'खुद कौन है' उसका भान हो जाए तो अहंकार चला जाता है

प्रश्नकर्ता : वह अहंकार निकालें कैसे?

दादाश्री : अहंकार तो, आप कौन हो, उसका यथार्थ भान हो जाए तो चला जाता है।

'मैं चंदूलाल' उसे ही ज्ञानी सब से बड़ा और अंतिम अहंकार कहते हैं। उससे सारा संसार टिका हुआ है। यह अहंकार जाए तभी मोक्ष में जा पाएँगे। यह जीवन किस आधार पर टिका हुआ है? पैरों पर या देह पर? नहीं, 'मैं हूँ' इसके आधार पर ही। 'मैं शुद्धात्मा हूँ', इस शुद्ध अहंकार से ही मोक्ष में जा सकते हैं। शेष सभी जन्मोंजन्म

के साधन बन जाते हैं।

अचेतन में 'मैं हूँ' ऐसा मानें, वह अहंकार है। यदि चेतन में 'मैं हूँ', ऐसा मानें, उसे अहंकार नहीं कहते। 'मैं हूँ' अर्थात् अस्तित्व तो है। अत: 'मैं हूँ', ऐसा कहने का अधिकार तो है। पर 'मैं हूँ', वह किसमें हूँ? उसका आपको पता नहीं है। अचतेन में 'मैं' बोलने का अधिकार नहीं है। 'मैं क्या हूँ?' इसका भान नहीं है। यदि यह भान हो जाए, तो काम ही हो जाए न!

अहंकार-ममता, उन्हें ही त्यागने की ज़रूरत

भगवान ने कहा है कि यदि तू मोक्ष में जाना चाहता है, तो कुछ भी त्यागने की ज़रूरत नहीं है। ये अहंकार और ममता, दो ही चीज़ों का त्याग किया, तो उसमें सबकुछ आ ही गया। अहंकार यानी 'मैं' और ममता यानी 'मेरा'। 'मैं' और 'मेरा', इन दोनों को ही त्यागना है। हम ज्ञान देते हैं, आपको स्वरूप का भान करवाते हैं, तब आपके अहंकार और ममता दोनों का त्याग करवाते हैं। एक ओर त्याग करवाया तो दूसरी ओर क्या ग्रहण करवाते हैं? 'शुद्धात्मा' ग्रहण करवाते हैं। फिर ग्रहण-त्याग की कोई झंझट ही नहीं रहती। अहंकार निकालने के लिए ही सारा त्याग करना होता है। हम आपका सारा अहंकार ही ले लेते हैं। फिर अस्तित्व क्या रहा? तो कहते हैं, जहाँ अस्तित्वपना है, वहाँ मूल जगह पर स्थापित किया। किसी एक जगह पर ही अहंकार का अस्तित्वपना होता है, तो हम मूल जगह पर अहंकार को बैठा देते हैं।

❖❖❖❖❖

[8]

धर्म, अंतःकरण का और आत्मा का

कषाय कॉज़ और अंतःकरण इफेक्ट

प्रश्नकर्ता : आत्मा और *पुद्गल* (अहंकार) के सानिध्य की वजह से चार कषाय खड़े हो गए, क्रोध-मान-माया-लोभ यह सही है?

दादाश्री : सही है।

प्रश्नकर्ता : तो मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार का उद्भव भी उसी प्रकार से हुआ है न?

दादाश्री : वह ऐसा है न, क्रोध-मान-माया-लोभ, वे तो प्रोडक्शन हैं और ये मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, ये तो इफेक्ट हैं।

प्रश्नकर्ता : ये इफेक्ट हैं, लेकिन क्या प्रोडक्शन का अर्थ इफेक्ट नहीं है? तो वह क्या है?

दादाश्री : प्रोडक्शन अर्थात् कॉज़ेज़। प्रोडक्शन अर्थात् कुछ चीज़ों के इकट्ठे होने से यह बन गया। *उपाधि* स्वरूप! विशेष स्वरूप होना!

प्रश्नकर्ता : आत्मा और *पुद्गल* का सानिध्य हुआ इसलिए

क्रोध-मान-माया-लोभ खड़े हो गए। उसी प्रकार मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार भी उत्पन्न हुए। यानी कि कॉज़ेज़ और इफेक्ट दोनों एक ही साथ उत्पन्न हुए?

दादाश्री : नहीं।

प्रश्नकर्ता : तो किस प्रकार से हुए?

दादाश्री : वह मूल सर्वप्रथम है उससे प्रोडक्शन, क्रोध-मान-माया-लोभ उत्पन्न हुए। अब, वे उत्पन्न हुए तो उनसे कर्म चार्ज होने लगे। वे नहीं होते तो चार्ज नहीं होता, वे हैं तो चार्ज होने लगे। वे ही भावकर्म हैं। क्योंकि क्रोध किया। वह उत्पन्न हो चुका है लेकिन अगर उसका उपयोग हो तो... उपयोग हुए बिना पड़ा रहे तो कोई हर्ज नहीं है। लेकिन उपयोग हुए बगैर रहेगा ही नहीं न! उपयोग हुए बगैर कब रहेगा? जब उसके पास खुद का ज्ञान होगा। तब सभी परमाणु डिस्चार्ज हो जाएँगे। क्योंकि उसमें से जीव भाव जा चुका होता है!

प्रश्नकर्ता : हाँ, उपयोग होने पर फिर क्या होता है?

दादाश्री : उपयोग होने पर कर्म बंधते हैं। कर्म बंधते हैं इसलिए उनका डिस्चार्ज होते समय यह इफेक्ट आता है, वे ही हैं भीतर यह अंत:करण, मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार सभी।

प्रश्नकर्ता : इस ज्ञान के बाद जो मन रहा, वह इफेक्टिव है?

दादाश्री : फिर इफेक्टिव है, बस! अज्ञानी को भी इफेक्टिव है सही लेकिन उस इफेक्टिव में भी अंदर कॉज़ेज़ उत्पन्न होते हैं जबकि इनमें (ज्ञान लेने के बाद में) कॉज़ेज़ उत्पन्न नहीं होते, कॉज़ेज़ बंद हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : चित्त का भी इसी प्रकार से है?

दादाश्री : मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार, सभी। पूरा ही

अंत:करण, वह पूरा इफेक्ट ही है। सिर्फ अंत:करण नहीं, यह बाह्यकरण भी इफेक्ट है। दोनों करण मात्र इफेक्ट ही हैं।

इस अंत:करण में जो होता है उसके बाद फिर क्रोध बाहर निकलता है। पहले अंत:करण में होता है। पहले अंत:करण में बाप के साथ लड़ता है और बाद में बाहर लड़ता है।

प्रश्नकर्ता : लेकिन अंत:करण वह तो इफेक्ट है फिर यह होता किस तरह से है?

दादाश्री : हाँ, लेकिन यह भी इफेक्ट है और वह भी इफेक्ट है लेकिन यह सूक्ष्म इफेक्ट है जबकि क्रोध में स्थूल इफेक्ट होता है, बाहर निकल जाता है इसलिए।

प्रश्नकर्ता : अंत:करण न हो तो फिर क्या क्रोध-मान-माया-लोभ उत्पन्न होंगे?

दादाश्री : नहीं, फिर कुछ भी नहीं।

प्रश्नकर्ता : तो फिर प्रथम क्या है? पहले आपने ऐसा कहा था कि प्रथम क्रोध-मान-माया-लोभ होते हैं और बाद में यह सारा इफेक्ट आता है।

दादाश्री : क्रोध-मान-माया-लोभ वे माँ-बाप हैं और ये सब उनके बच्चे हैं, बाद में उनकी वंशावली मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार होते हैं।

मूल आत्मा को नहीं है कुछ लेना-देना

मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार कर्म बंधने से उत्पन्न हुए हैं। वे कर्म छूट जाते हैं तो ये सब खत्म हो जाते हैं।

प्रश्नकर्ता : तब फिर मन-बुद्धि और चित्त वे आत्मा में रहते हैं?

दादाश्री : नहीं, मूल आत्मा को कोई लेना-देना नहीं है। मूल

आत्मा में मन भी नहीं है, बुद्धि भी नहीं है, चित्त है लेकिन जैसा अपना चित्त है वैसा नहीं है। अपना चित्त अशुद्ध है और वह शुद्ध चित्त है। आप जिसे चित्त कहते हो न, वह अशुद्ध चित्त है। जो चित्त बुद्धि के साथ रहता है वह चित्त अशुद्ध है। इस चित्त की अशुद्धि हो गई है जबकि आत्मा में शुद्ध चित्त है। यानी अशुद्ध चित्त वाला, खाता शरीर है और मानता क्या है कि 'मैंने खाया।' शरीर सो जाता है तब कहता है, 'मैं सो गया।' शरीर काम करे तब कहता है, 'मैं काम कर रहा हूँ।' ये सारे गुण अशुद्ध चित्त के हैं। चित्त की अशुद्धि को लेकर ये दोष हो जाते हैं, अत: कर्म बंधते हैं। जब कर्म नहीं बंधते तब मुक्त हो जाते हैं, अक्रियपन आता है।

आत्मा के प्रकाश से चलता है सबकुछ

प्रश्नकर्ता : आत्मा और अंत:करण के बीच कोई संबंध नहीं है?

दादाश्री : बिल्कुल भी नहीं। सिर्फ आत्मा का प्रकाश मिलता रहता है, प्रकाश आत्मा का है। अंत:करण को यह प्रकाश मिलता है। इस प्रकाश के आधार पर अंत:करण चलता रहता है।

इस शरीर में आत्मा का बिल्कुल भी उपयोग नहीं होता। शरीर में सिर्फ उसका प्रकाश ही आता रहता है। बाकी, आत्मा इसमें कुछ भी नहीं करता। और उस प्रकाश से सबकुछ चलता रहता है। ये मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार सभी इस प्रकाश के आधार पर सारे काम कर रहे हैं और यह सब डिस्चार्ज है।

प्रश्नकर्ता : यह सब मन-बुद्धि-चित्त व अहंकार ही करते हैं, तो फिर आत्मा को क्या करना होता है?

दादाश्री : आत्मा को ज्ञाता-द्रष्टा और परमानंद में रहना है। लेकिन खुद के गुणधर्म में आ जाना चाहिए। वह तो 'ज्ञानी पुरुष' 'रियल' और 'रिलेटिव' की लाइन ऑफ डिमार्केशन डाल देते हैं, उसके बाद आत्मा खुद के स्वाभाविक धर्म में आ जाता है। खुद के

स्वाभाविक धर्म में आने के बाद में कुछ भी नहीं रहता। फिर एक जन्म में ही मोक्ष में चला जाता है।

आत्मा के स्वभाव को पहचानने की ज़रूरत

प्रश्नकर्ता : आत्मा का धर्म और अंतःकरण का धर्म, वह भेद विस्तारपूर्वक समझाइए।

दादाश्री : देखो, ये कान हैं इनसे हमें नहीं सुनना हो, इस तरह दबा दें फिर भी थोड़ा-बहुत सुनते हैं न? सुनते हैं या नहीं सुनते?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : अतः सुनना वह कान का स्वभाव है। देखना आँखों का स्वभाव है। हमें नहीं देखना हो, हम तय करें कि नहीं देखना है फिर भी ऐसे करके आँखें टेढ़ी करके ज़रा देख लेते हैं। नाक का स्वभाव है कि अगर हमें नहीं सूंघना हो फिर भी सुगंध आ जाती है। जीभ का स्वभाव है कि मिर्च तीखी लगती है। हमारी इच्छा हो कि तीखा न लगे फिर भी तुरंत असर हो जाता है। इस बॉडी (शरीर) का स्वभाव स्पर्श है। तो ठंड लगते ही तुरंत असर हो जाता है। ये पाँच इन्द्रियाँ वे ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। और कर्मेन्द्रियाँ किन्हें कहते हैं? ये पैर, हाथ, चेहरा; खाते हैं, संडास-बाथरूम जाते हैं; कुल मिलाकर पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं, ये सब अपने-अपने स्वभाव में हैं। अगर आपको संडास जाना हो और कोई ज़्यादा पैसे देने वाला ग्राहक आया हो तो उसके साथ ज़रा ज़्यादा देर तक बैठे रहते हैं, उसके (संडास के) स्वभाव को रोककर। फिर वह संडास का स्वभाव चिढ़ जाता है। प्रकृति रिएक्शन (प्रतिकार) करती है। और फिर कहता है कि, 'मुझे कब्ज हो गया।' हर एक को अपने-अपने स्वभाव में रहने दो, उसके स्वभाव में हेल्प करो। ये पाँच ज्ञानेन्द्रियों और पाँच कर्मेन्द्रियों की बात हो गई।

अब दूसरी चीज़ यह अंदर की बात है। मन अपने स्वभाव में

है। आपको नहीं सोचना हो फिर भी, ज़रा कुछ देखा कि सोचना शुरू कर देता है। उसे बस कुछ मिलना चाहिए। अत: मन अपने स्वभाव में है। मन का स्वभाव है सोचना।

आपकी इच्छा न हो फिर भी चित्त वहाँ पर ऑफिस में चला जाता है। और ऑफिस की टेबल वगैरह सब देख आता है। भटकना वह चित्त का स्वभाव है। सभी अपने-अपने स्वभाव बता रहे हैं। सिर्फ (व्यवहार) आत्मा ही अपना स्वभाव छोड़कर, बाकी सभी के स्वभावों को कहता है कि, 'मैं कर रहा हूँ।' सिर्फ (व्यवहार) आत्मा ने खुद का स्वभाव छोड़ दिया है और दूसरों के स्वभाव को कहता है, 'मैंने किया।' ये विचार किए तो 'मैंने किए, ऐसा कहते हैं।' 'यह चित्त भटकता है' तब कहता है, 'मैं भटकता हूँ।' ओहोहो! सुना तो 'मैंने सुना।' 'मैं संडास जाकर आया। मैंने खाया', कहता है। अरे, किस तरह का मनुष्य है तू? हर कोई अपने-अपने स्वभाव में है। यह बात साइन्टिफिक (वैज्ञानिक) नहीं लगती? अब सिर्फ आत्मा के स्वभाव को पहचानने की ज़रूरत है। बाकी कुछ भी पहचानने की ज़रूरत नहीं है।

अंत:करण स्वसंचालित पर डिस्चार्ज स्वरूप

प्रश्नकर्ता : तो यह सब कौन करता है? इन सब ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों की मूवमेन्ट्स (गति) और इनके मैनेजमेन्ट (संचालन) का कंट्रोलिंग पावर (काबू में रखने वाली शक्ति) किसका है?

दादाश्री : इन पर कंट्रोल (काबू करने वाला) वह रिएक्शनरी पावर (पारिणामिक शक्ति) है, डिस्चार्ज पावर है। अब इस अंत:करण की मूवमेन्ट्स तो हैं ही, लेकिन इसे किसी को चलाना नहीं पड़ता। वह डिस्चार्ज (*निर्जरा*) हो रहा है। डिस्चार्ज में तो किसी को कुछ करना ही नहीं पड़ता न!

प्रश्नकर्ता : अंत:करण स्वसंचालित है?

दादाश्री : स्वसंचालित है, लेकिन वह डिस्चार्ज है। स्वसंचालित

अर्थात् यह कोई गप्प नहीं है, डिस्चार्ज हो रही चीज़ है। यानी अभी यह पाँच रतल (पाउन्ड) है तो स्वसंचालित में तो ये बढ़कर पाँच से दस रतल भी हो सकते हैं, उसमें चीज़ घटती नहीं है। जबकि यह तो घटता है। अत: पाँच रतल से चार रतल हो जाता है, चार से तीन हो जाता है, तीन से दो हो जाता है, एक हो जाता है फिर ज़ीरो हो जाता है और यहाँ से अर्थी निकल जाती है।

प्रश्नकर्ता : यानी कि कम होता जाता है?

दादाश्री : डिस्चार्ज होता जाता है। यानी अंत:करण को स्वसंचालित कहा जाता है। यह स्वसंचालित है लेकिन डिस्चार्ज के रूप में है। जिस तरह टंकी का पानी स्वसंचालित गिरता ही रहता है। इसका अर्थ यह है कि खाली हो रहा है। यानी कि टंकी डिस्चार्ज हो रही है ऐसा कहा जाएगा न!

प्रश्नकर्ता : चार्ज करने वाला हो तभी डिस्चार्ज होगा न?

दादाश्री : चार्ज तो हो चुका है। अभी तक आपने जो सुना और जो भी किया, वह सारा चार्ज (पूरण) हो चुका है या नहीं?

प्रश्नकर्ता : हाँ।

दादाश्री : अब वह चार्ज हो चुका है। अब मैं 'आपको' आपके स्वभाव में ला देता हूँ और 'आप' आत्मा के धर्म में आ जाते हो। और आप इन सब के धर्मों को देखते रहो, तो फिर आपका पहले का जो चार्ज हो चुका है, उतना डिस्चार्ज होना बाकी रहता है। उतना उधार चुकाना बाकी रहेगा, जितना उधार करके बैठे हो उतना ही, नया कर्ज़ नहीं होता। नया कर्म नहीं बंधता। यानी कि चार्ज नहीं होता और पुराना डिस्चार्ज होता रहता है। अकाउन्ट (हिसाब) सारे क्लियर (साफ) हो जाते हैं। अकाउन्ट ही क्लियर करने हैं।

आत्मा का धर्म सिर्फ देखना-जानना ही

आत्मा का धर्म क्या है? इन सभी धर्मों को जानना। मन-बुद्धि-

चित्त-देह, ये सभी क्या कर रहे हैं उन्हें जाना करे, उसे आत्मा कहते हैं। सभी अपने-अपने धर्म में हैं और 'आप' अपने धर्म में रहो।

अंत:करण में सभी के धर्म अलग-अलग हैं। मन के धर्म अलग, चित्त के धर्म अलग, बुद्धि के धर्म अलग और अहंकार के धर्म अलग। ऐसे, सब के धर्म अलग-अलग हैं। पर 'खुद' अंदर दखल करके बखेड़ा खड़ा करता है न! उनमें तन्मयाकार हो जाता है, वही भ्रांति है।

यह संसार किससे खड़ा है? अंत:करण में मन शोर मचाए तो खुद फोन ले लेता है और 'हैलो, हैलो' करता है। चित्त का फोन ले लेता है, बुद्धि का फोन, अहंकार का ले लेता है इसलिए। मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार क्या धर्म निभाते हैं, उसे देखिए और जानिए। 'हमें' किसी का फोन नहीं लेना है। आँख, कान, नाक आदि क्या-क्या धर्म निभाते हैं उसके हम 'ज्ञाता-द्रष्टा' हैं। यदि मन का या चित्त का या किसी का भी फोन ले लेंगे तो सब से टकराव हो जाएगा। वह तो जिसका फोन हो, उसे 'हैलो' करने देना है, 'खुद' मत करना।

अरे, आपने कभी खाने के बाद पता लगाया है कि अंदर आँतों और पेट में क्या होता है? सारे अवयव अपने गुणधर्म में ही हैं। कान उनके सुनने के गुणधर्म में नहीं होते तो सुनाई नहीं देता। नाक उसके गुणधर्म में नहीं होती तो सुगंध और दुर्गंध नहीं आती। उसी प्रकार मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार सभी अपने गुणधर्म में ठीक से चलते हैं कि नहीं उसका ध्यान रखना है। 'खुद' 'शुद्धात्मा' में रहे तो कोई हर्ज आए ऐसा नहीं है। अंत:करण उसके गुणधर्म में रहे, जैसे कि मन पैम्फलेट दिखाने का काम करे, चित्त फोटो दिखाए, बुद्धि डिसिज़न ले और अहंकार हस्ताक्षर कर दे तो सब ठीक चलता है। वे उनके गुणधर्म में रहें और शुद्धात्मा अपने गुणधर्म में रहे, ज्ञाता-द्रष्टा पद में रहे तो कोई परेशानी आए ऐसा नहीं है। प्रत्येक अपने-अपने गुणधर्म में ही हैं। अंत:करण में कौन-कौन से गुणधर्म बिगड़े हुए हैं, उसका पता लगाना है और बिगड़े हुए हों तो कैसे सुधारना है, इतना ही

करना है। पर खुद कहता है कि 'मैंने विचार किया, मैं ही बोलता हूँ, मैं ही करता हूँ'। ये हाथ-पैर भी अपने गुणधर्म में हैं पर कहता है कि 'मैं चला'। सिर्फ अहंकार ही करता है और अहंकार को ही खुद का आत्मा माना है, वही दखल है।

'हमारा' तो इन मन-बुद्धि-चित्त और अहंकार के साथ 'ज्ञाता-ज्ञेय' का संबंध है। हम ज्ञाता और अंतःकरण वह ज्ञेय है।

ज्ञानी का अंतःकरण

ज्ञानी का अंतःकरण कैसे कार्य करता है? 'खुद' यदि हट जाए तो 'आत्मा' 'अंतःकरण' से अलग ही है। आत्मा अलग हो जाता है तो सांसारिक कार्य अंतःकरण से चलते रहते हैं। अलग कर देने के बाद में ज्ञानी का अंतःकरण खुद ही स्वाभाविक रूप से काम करता रहता है। क्योंकि दखलंदाज़ी बंद हो गई न, इसलिए अंतःकरण का कार्य बहुत ही अच्छा और जहाँ पर ज़रूरत होती है वहीं पर होता है और लोगों के लिए उपयोगी हो जाता है। आत्मा अलग हो जाता है तो सांसारिक कार्य अंतःकरण से चलते रहते हैं। इसी को सहज कहते हैं!

अंतःकरण की शुद्धि

प्रश्नकर्ता : अंतःकरण की शुद्धि के लिए जो साधन बताए हैं, वे कितने अंश तक ज़रूरी हैं?

दादाश्री : कौन-से साधन?

प्रश्नकर्ता : जप-तप, वे सब।

दादाश्री : जब तक साध्य वस्तु नहीं मिलती, तब तक साधनों में रहना चाहिए। परंतु यदि 'ज्ञानी पुरुष' मिल जाएँ तो कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं है। 'ज्ञानी पुरुष' खुद ही सबकुछ कर देते हैं। और वे नहीं मिले हों, तो आपको कुछ न कुछ करना ही चाहिए। नहीं तो उल्टी चीज़ें घुस जाएँगी। शुद्धिकरण नहीं करो तो अशुद्धि ही होती

रहती है या नहीं होती? इसलिए आपको रोज़ सफाई तो करनी ही पड़ेगी न! 'ज्ञानी पुरुष' मिल गए हों तो उन्हें कहना कि, साहब, मेरा निबेड़ा ला दीजिए। वे 'ज्ञानी पुरुष' एक घंटे में ही सब कर देते हैं, फिर सिर्फ उनकी आज्ञा में रहना है कि चलती लिफ्ट में हाथ बाहर मत निकालना। नहीं तो हाथ कट जाएगा और पूरी लिफ्ट रोक देनी पड़ेगी। यह तो मोक्ष में जाने की लिफ्ट है।

देह के साथ अंत:करण की भेंट देकर यदि एक ही घंटा ज्ञानी पुरुष के साथ बैठें तो संसार के मालिक बन सकते हैं। हम उस एक घंटे में तो आपके पापों को भस्मीभूत करके, आपके हाथों में दिव्यचक्षु दे देते हैं, शुद्धात्मा बना देते हैं। फिर आपको जहाँ जाना हो, वहाँ जाइए न! यह ज्ञान तो आखिर में मोक्ष में पहुँचने तक साथ ही रहेगा। यहाँ हमारी हाज़िरी में अंत:करण की शुद्धि होती रहती है। उसमें दु:ख होते हों तो वे बंद हो जाते हैं। उपरांत शुद्धि होती है। उस शुद्धि से तो यथार्थ आनंद उत्पन्न होता है! सदा की शांति होती है!

❖❖❖❖❖

दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा प्रकाशित हिन्दी पुस्तकें

1. आत्मसाक्षात्कार
2. ज्ञानी पुरुष की पहचान
3. सर्व दु:खों से मुक्ति
4. कर्म का सिद्धांत
5. आत्मबोध
6. मैं कौन हूँ ?
7. पाप-पुण्य
8. भुगते उसी की भूल
9. एडजस्ट एवरीव्हेयर
10. टकराव टालिए
11. हुआ सो न्याय
12. चिंता
13. क्रोध
14. प्रतिक्रमण (सं, ग्रं)
16. दादा भगवान कौन ?
17. पैसों का व्यवहार (सं, ग्रं)
19. अंत:करण का स्वरूप
20. जगत कर्ता कौन ?
21. त्रिमंत्र
22. भावना से सुधरे जन्मोंजन्म
23. चमत्कार
24. प्रेम
25. समझ से प्राप्त ब्रह्मचर्य (सं, पू, उ)
28. दान
29. मानव धर्म
30. सेवा-परोपकार
31. मृत्यु समय, पहले और पश्चात्
32. निजदोष दर्शन से... निर्दोष
33. पति-पत्नी का दिव्य व्यवहार (सं)
34. क्लेश रहित जीवन
35. गुरु-शिष्य
36. अहिंसा
37. सत्य-असत्य के रहस्य
38. वर्तमान तीर्थंकर श्री सीमंधर स्वामी
39. माता-पिता और बच्चों का व्यवहार(सं)
40. वाणी, व्यवहार में... (सं)
41. कर्म का विज्ञान
42. सहजता
43. आप्तवाणी - 1
44. आप्तवाणी - 2
45. आप्तवाणी - 3
46. आप्तवाणी - 4
47. आप्तवाणी - 5
48. आप्तवाणी - 6
49. आप्तवाणी - 7
50. आप्तवाणी - 8
51. आप्तवाणी - 9
52. आप्तवाणी - 12 (पू, उ)
54. आप्तवाणी - 13 (पू, उ)
56. आप्तवाणी - 14 (भाग-1 से 4)
60. ज्ञानी पुरुष (भाग-1)
61. व्यसन मुक्ति का मार्ग
62. पहचानें अंत:करण को

(सं - संक्षिप्त, ग्रं - ग्रंथ, पू - पूर्वार्ध, उ - उत्तरार्ध)

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा गुजराती भाषा में भी कई पुस्तकें प्रकाशित हुई है। वेबसाइट www.dadabhagwan.org पर से भी आप ये सभी पुस्तकें प्राप्त कर सकते हैं।

★ दादा भगवान फाउन्डेशन के द्वारा हर महीने हिन्दी, गुजराती तथा अंग्रेजी भाषा में ''दादावाणी'' मैगेज़ीन प्रकाशित होता है।

संपर्क सूत्र

दादा भगवान परिवार

अडालज (मुख्य केन्द्र) : **त्रिमंदिर**, सीमंधर सिटी, अहमदाबाद-कलोल हाईवे, पोस्ट : अडालज, जि.-गांधीनगर, गुजरात - 382421
फोन : +91 79 3500 2100, +91 9328661166/77
E-mail : info@dadabhagwan.org

मुंबई : **त्रिमंदिर,** ऋषिवन, काजुपाडा, बोरिवली (E)
फोन : 9323528901

पुणे : **त्रिमंदिर,** पुणे-बेंगलुरू हाईवे, खेड़ शिवापुर के पास, वर्वे बुद्रुक, जिला-पुणे, महाराष्ट्र **फोन :** 7203098409

थाणे : **त्रिमंदिर**, ग्लोबल हॉस्पिटल के पास, साकेत-बालकुम रोड, माजीवाडा, **फोन :** 9323528901

दिल्ली	9810098564	**मुंबई**	9323528901
चंडीगढ़	9780732237	**पुणे**	7218473468
जालंधर	9814063043	**नागपुर**	9403399377
हिसार	9255411280	**अमरावती**	9422915064
जयपुर	9928650014	**बेंगलुरू**	9590979099
लखनऊ	9118735529	**हैदराबाद**	9885058771
वाराणसी	9795228541	**चेन्नई**	9441770916
पटना	7352723132	**रायपुर**	9179025061
भोपाल	9826926444	**भुवनेश्वर**	7077902158
इन्दौर	9229500845	**कोलकाता**	9830080820

U.S.A. : **DBVI Tel. :** +1 877-505-DADA (3232),
Email : info@us.dadabhagwan.org

U.K. : +44 330-111-DADA (3232)

Kenya : +254 795-92-DADA (3232)

UAE : +971 557316937

Dubai : +971 501364530

Australia : +61 402179706

New Zealand : +64 21 0376434

Singapore : +65 91457800

www.dadabhagwan.org

मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार का संपूर्ण स्पष्टीकरण देते हैं ज्ञानी

सारी दुनिया जिस साइन्स की खोज में है, उस साइन्स का सर्व प्रथम संपूर्ण स्पष्टीकरण हम देते हैं। मन को समझना बहुत मुश्किल है। मन क्या है? बुद्धि क्या है? चित्त क्या है? अहंकार क्या है? उन सभी का यथार्थ स्पष्टीकरण हम देते हैं।

चारों रूपी हैं और पढ़े जा सकें ऐसे हैं। चक्षुगम्य नहीं हैं, ज्ञानगम्य हैं। फिज़िकल हैं। शुद्ध आत्मा से उनका कोई लेना-देना नहीं है। वह पूर्णतया अलग ही है। हम पूर्ण रूप से अलग हैं, इसलिए उनका यथार्थ वर्णन कर सकते हैं।

- दादाश्री

DBF • Adalaj

ISBN 978-81-992022-1-4

9 788199 202214

Printed in India

Price ₹50